ओ३म्

ब्रह्मचर्य के साधन

(एकादश भाग)

मेखला

लेखक :

स्वामी ओमानंद सरस्वती

प्रस्तुति :

दुर्लभ ज्ञान

ओ३म्

ब्रह्मचर्य के साधन

(एकादश भाग)

मेखला

लेखक :

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

दो शब्द

प्राचीनकाल में गुरुकुलों में वेदों के विद्वान् देवसंज्ञक आचार्य यज्ञोपवीत संस्कार करवाते थे और फिर वे वेदारम्भसंस्कार के समय मेखला कौपीनादि वस्त्र दण्ड और कमण्डलु धारण कराते थे। मेखला (तागड़ी) ब्रह्मचर्यपालन के लिए दीक्षा के रूप में एक चिह्न के रूप में गुरुओं के द्वारा देने की परिपाटी चली आती थी। महाभारत के पश्चात् जब गुरुकुल शिक्षाप्रणाली लुप्त होगई तो मेखला-धारण करने की रीति तो चलती रही किन्तु गुरु के स्थान पर घरों में माताओं ने यह कार्य अपने ऊपर लेलिया और आज तक माताएं ही इसको बांधकर इस श्रेष्ठ पद्धति को चलाती रही हैं।

इसके महत्त्व को प्रायः सभी भूल गये। गुरुकुलों में भी इसका बांधना अनिवार्य नहीं समझा गया। इस कल्याणकारी ऋषियों की प्रिय मेखला, जो ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य की प्राणों के समान रक्षक है, की ओर ध्यान नहीं दिया। किसी किसी वेदभक्त अनुभवी आचार्य ने अपने ब्रह्मचारियों को मेखला बांधकर जनता का ध्यान इस ओर खींचा। किसी वेद के विद्वान् ने मेखलासूक्त पर लिखकर इसकी महत्ता पर अच्छा प्रकाश नहीं डाला।

महर्षि दयानन्द ने संस्कारविधि में इसे बांधने पर बल दिया है। इसे सदैव धारण करने के लिए ब्रह्मचारी का नित्यधर्म कर्त्तव्य बताया है। श्रद्धावश अपनी बुद्धि तथा अनुभव के आधार पर जनकल्याण की भावना से मेखलासूक्त पर कुछ लिखने का यत्न किया है। इसे पढ़ें और मेखला-धारण करके लाभ उठावें।

ओमानन्द सरस्वती

विषय-सूची

क्र०	विषय	पृष्ठांक
१.	ब्रह्मचारी के तीन धार्मिक चिह्न	४०१
२.	मेखलासूक्त	४०२
३.	वेद में देव शब्द	४०३
४.	देवों द्वारा मेखलाबन्धन	४०४
५.	मेखला धारण का मन्त्र	४०८
६.	मेखला के नाम	४०९
७.	शास्त्रों में मेखला	४०९
८.	मेखला के निर्माण में विकल्प	४१०
९.	मूंज के गुण	४१०
१०.	मूंज के नाम	४११
११.	मेखला के अर्थ	४११
१२.	मेखला वा कौपीन	४१४
१३.	मेखला और अन्त्रवृद्धि	४१४
१४.	लंगोट वा कौपीन कैसी हो	४१५
१५.	मेखला टूटने पर क्या करें	४१६
१६.	मेखला की गांठें	४१६
१७.	गांठों के लाभ	४१७
१८.	वीरों की मेखला	४१८
१९.	देवों और ऋषियों में भेद	४१९
२०.	सात प्रकार के विद्वान्	४१९
२१.	ऋषि और देवों का निर्माण	४२०
२२.	देवों की उत्पत्ति	४२१
२३.	मृत्यु का ब्रह्मचारी	४२४
२४.	ऋषियों की स्वसा मेखला	४२८
२५.	श्रद्धा योगी की जननी के समान	४३१
२६.	शूर-वीर क्षत्रिय	४३३
२७.	धीर के लक्षण	४३३
२८.	ऋषियों की मेखला	४३४
३०.	कवित्त	४३८
३१.	शूरवीर ब्रह्मचारी	४३९
३२.	महर्षि दयानन्द और वेद	४३९

ब्रह्मचर्य के साधन

एकादश भाग

मेखला

ब्रह्मचारी के तीन धार्मिक चिह्न

ब्रह्मचारी तीन धार्मिक चिह्नों को धारण करता है।

१. शिखा

जिसको चोटी भी कहते हैं। जब बालक एक वर्ष का वा तीन वर्ष का हो जाता है उस समय उस का मुण्डना वा चूडाकर्म संस्कार होता है। इसमें बालक के शिर के सभी बाल वा केश कटवा दिये जाते हैं। केवल शिखा (चोटी) रखी जाती है। वैसे दूसरी बार बाल मुण्डवाते समय शिखा वा चोटी रखवाना अच्छा माना जाता है

२. सूत्र वा यज्ञोपवीत

विद्या का चिह्न है जिसे ब्रह्मचारी उपनयन संस्कार के समय धारण करता है। घर पर इसे माता-पिता तथा गुरुकुल में आचार्य यज्ञोपवीत संस्कार कर सूत्र वा जनेऊ को धारण कराता है। वेद में आदेश भी है-

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रिस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ।।

अथर्व० ११।७।३

आचार्य ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण कराके अपने पास लाता है अर्थात् यहां तक निकट लाता है उसे अपने गर्भ में धारण कर लेता है, उसका माता के समान धारण-पोषण करता है। आचार्य की छत्र-छाया में रहकर उसका विद्या का द्वितीय जन्म होता है, जिससे वह द्विज कहलाता है। जब तक उसका तीनों प्रकार का अर्थात् आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक अज्ञान दूर नहीं कर देता तब तक अपनी देख रेख में रखता है। यही आचार्य के गर्भ की तीन रात्रियां हैं। प्रकृति जीवात्मा और परमात्मा सम्बन्धी अज्ञान की ही तीन अन्धकारमय रात्रियां हैं, इनको दूर करके आचार्य ब्रह्मचारी को दर्शनीय विद्वान् बना देता है तब उस ब्रह्मचारी का सब देव विद्वान् लोग आदर सम्मान करते हैं और ब्रह्मचारी का

ब्रह्मसूत्र=यज्ञोपवीत धारण करना, आचार्य के समीप आना (उपनयन धारण करना) सार्थक होजाता है। वह ज्ञानी तेजस्वी ब्रह्मचारी विद्वान् होकर चतुर्थ प्रकाशमय अवस्था अर्थात् देवों के ऊंचे स्थान को प्राप्त करता है। जनेऊ धारण करने का समय ५ वर्ष की आयु से लेकर १२ वर्ष की आयु तक माना है। यह ब्रह्मचारी का द्वितीय धार्मिक चिह्न यज्ञोपवीत जनेऊ वा उपनयन कहलाता है। इसे विद्या पढ़ने में समर्थ सभी बालक-बालिकायें धारण करते हैं।

३. मेखला

ब्रह्मचारी का तृतीय चिह्न मेखला है जिसे तगड़ी वा तागड़ी भी कहते हैं। इसे धारण करने का समय भी सामान्यावस्था में ५ वर्ष से लेकर १२ वर्ष की आयु तक ही है। वेदारम्भ संस्कार के समय ही विद्वान् आचार्य ब्रह्मचारी को मेखला धारण कराता है। आजकल घरों में मातायें ही बालकों के मेखला, तगड़ी बांध देती हैं। पहले कन्यायें भी मेखला तथा जनेऊ धारण करती थीं। आजकल केवल लड़के ही मेखला तगड़ी पहनते हैं। कन्याय तगड़ी नहीं पहनतीं। विवाह होने पर आभूषण के रूप में चांदी की तगड़ी (मेखला) पहनती हैं। पुरानी मूर्तियों में देखने से यही प्रमाणित होता है कि स्त्री पुरुष दोनों ही मेखला धारण करते हैं। देवसंज्ञक विद्वान् ही ब्रह्मचारी को मेखला प्रदान करता है। वेद में मेखलासूक्त में इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। इस सूक्त में पांच मन्त्र आते हैं जिनकी व्याख्या नीचे की जाती है।

मेखलासूक्त

य इमां देवो मेखलामाबबन्ध यः सन्ननाह य उ नो युयोज।
यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः स पारमिच्छात् स उ नो विमुञ्चात्।।

अथर्व० ६।१३३।१

अर्थ-(यः देवः) जिस देवसंज्ञक विद्वान् आचार्य, गुरु ने (नः) हमारे (इमां) यह (मेखलां) तगड़ी (आबबन्ध) अच्छी प्रकार बांधी है। (यः सन्ननाह) जिसने सजाई है (उ) और (यः युयोज) जिसने संयुक्त की है (यस्य) जिस (देवस्य) विद्वान् आचार्य के (प्रशिषा) उत्तम शासन से (चरामः) हम (ब्रह्मचारी) विचरते वा चलते हैं (सः) वह (नः) हमें (पारम्) पार (इच्छात्) लगावे (सः उ) वह ही कष्टों से, दुःखों से, सर्व प्रकार के बन्धनों से (विमुञ्चात्) मुक्त करे, छुड़वाये।

महर्षि दयानन्द इस युग में आप्त पुरुष हैं। '**आप्तोपदेशः शब्दः**' (न्यायदर्शन ११।७)। आप्त पुरुष का उपदेश वा कथन सत्य होता है अतः वह शब्द प्रमाण की कोटि में आजाता है, इसलिए वह सबको माननीय होता है। महर्षि देव दयानन्द

सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं-"**विद्वांसो हि देवाः**" (शतपथ ब्राह्मण ३।७।३।१०) "जो विद्वान् हैं उन्हीं को देव कहते हैं। जो सांगोपांग चार वेदों के जाननेवाले हैं उनका नाम ब्रह्मा और जो उनसे न्यून कहे हों, उनका नाम देव अर्थात् विद्वान् है।"

वेद में देव शब्द

महर्षि दयानन्द 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।' ऐसा मानते हैं और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त सभी ऋषि-महर्षि इसी सिद्धान्त को मानते आये हैं। मनु जी महाराज ने- "**धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।**'

धर्म का यथार्थ रूप जानने के लिए परम प्रमाण वेद को ही माना है। वेद में देव शब्द का बहुत ही प्रयोग हुआ है।

देव शब्द "दिवु" धातु से बना है, इसके बारह अर्थ हैं। खेलना जीतने की इच्छा, व्यवहार (आदान-प्रदान), प्रकाश, प्रशंसा, आनन्द, अहंकार, निद्रा, शोभा, गति (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) आदि। देवों का देव सबसे बड़ा विद्वान् होने से परमात्मा को भी देव कहते हैं।

(१) यह संसार परमात्मा और विद्वान् दोनों का क्रीड़ाक्षेत्र है। परमात्मा संसार का कर्त्ता-धर्ता और हर्त्ता है, वह सृष्टि की रचना करता है, सब प्राणियों का पालन-पोषण करता है और सब जीवों के कर्मों का, यथायोग्य कर्मों का फल देकर सुखी वा दुःखी रखता है, यही प्रभु का खेल है। विद्वान् भी विद्या के द्वारा अपनी क्रीड़ा करता है, अविद्या का नाश करके प्राणियों को अनेक प्रकार के सुख प्रदान करता है। देवकोटि का विद्वान् ईश्वर की आज्ञानुसार चलकर अपना खेल खेलता है। वह खूब आनन्द लेता है और अपनी विद्या के द्वारा अन्य प्राणियों को सुख प्रदान करता है। मूर्ख अपनी मूर्खता से ऐसे खेल खेलते हैं जो अनेक दुःख और बन्धन के कारण होते हैं।

(२) विद्वान् अपने सब कार्यों में सफल होते हैं, विजय उनके पैर चूमती है। मूर्खों की पग-पग पर हार होती है।

(३) देव व्यवहारकुशल होते हैं, मूर्ख इसके विपरीत व्यवहारशून्य होते हैं।

(४) देव ज्ञानी तथा दूसरों को ज्ञान देनेवाले होते हैं। ज्ञान का प्रकाश ही तो उनको अनेक दिव्यगुणों से भर देता है। इसी प्रकाश से वे संसार के पथप्रदर्शक वा गुरु बनते हैं।

(५) अनेक विद्यार्थी दिव्यगुणों के कारण उनकी स्तुति वा प्रशंसा होती है, क्योंकि वे देव परोपकार में ही लगे रहते हैं।

(६) देवों के स्वप्न संसार को स्वर्ग बनाने के होते हैं। वे शरीर और मस्तिष्क स्वस्थ रखने के लिए उचित मात्रा में निद्रा का सेवन करते हैं।

(७) परमात्मा की आज्ञानुसार आचरण करने से देव सदैव मुदित=प्रसन्नचित्त आनन्द में रहते हैं।

(८) देवों में स्वात्माभिमान होता है, मिथ्या अभिमान अहंकार नहीं होता।

(९) अपने दिव्यगुणों के कारण उनमें विशेष कान्ति=कमनीयता होती है। उनकी यह कान्ति वा तेज सबके आकर्षण का कारण बनता है।

(१०) सब विद्याओं के द्वारा देवसंज्ञक विद्वान् संसार में अविद्या का नाश करके विद्या का प्रकाश फैलाते हैं।

(११) देव सदैव शुभ कर्मों के करने के लिये पुरुषार्थ करते हैं, जुटे रहते हैं, मूर्ख प्रमादी आलसी अथवा अधर्म पाप करने में अपने कर्त्तव्य की पूर्ति समझते हैं।

(१२) देव अपने जीवन में पृथ्वी से लेकर परमात्मा पर्यन्त का ज्ञान करते तथा अन्यों को कराते हैं। वे स्वयं जीवनमुक्त होते हैं और अन्यों को भी जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष की ओर प्रवृत्त करते हैं। ये अर्थ विद्वान् और परमात्मा दोनों में घटते हैं इसलिए दोनों ही देव कहलाते हैं।

वेद के व्याकरण निरुक्त में महर्षि यास्क ने निम्न प्रकार से देव शब्द के अर्थ किये हैं-

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा।।

(निरुक्त अ० ७ पा० ४ ख १५

दान देने से देव नाम होता है, जो अपने विद्यादि सभी पदार्थों को संसार के हितार्थ देता है, वह विद्वान् देव नाम से संसार में प्रसिद्ध होता है। दीपन विद्या का प्रकाश करने से, द्योतन सत्योपदेश देने से विद्वान् को देव कहते हैं। सब मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करने से सूर्यादि लोकों को भी देव कहते हैं। माता, पिता आचार्य और अतिथि, विद्वान् संन्यासी भी पालन, विद्या और सत्य उपदेश के करने से देव कहे जाते हैं। इन सब देवों का देव आदि गुरु ईश्वर भी अपने उपरोक्त गुणों के कारण सब से बड़ा देव महादेव कहलाता है।

देवों द्वारा मेखला बन्धन

इस मन्त्र में देव शब्द का प्रयोग विद्वान् आचार्य गुरु के लिये हुआ है वह ही अपने ब्रह्मचारियों के मेखला बांधता है। क्योंकि मेखला के समान पवित्र चिह्न के द्वारा व्रत में बांधने का अधिकार केवल वेद भगवान् ने देवसंज्ञक आचार्य को ही

दिया है। क्योंकि-

''सदा देवा अरेपसः''

देवसंज्ञक निष्काम ज्ञानी विद्वान् आचार्य सदा निर्दोष और निष्पाप होते हैं, क्योंकि वे पवित्र वेद के ज्ञान की गंगा बहाकर सारे संसार के पाप तथा दोषों को धो डालते हैं, सबको ज्ञानामृत पिलाकर निष्पाप करके इनका धारण पोषण करते हैं। ये देव स्वयं परिश्रमी होते हैं और-

''न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः''

परिश्रम के बिना देव किसी के मित्र वा सखा नहीं बनते, वे पुरुषार्थयों के ही साथी होते हैं। क्योंकि देवों की मित्रता का लाभ परिश्रम से थके हुए मानवों को ही प्राप्त होता है। देवों का देव भगवान् भी-

'इन्द्र इच्चरतः सखा'

पुरुषार्थी के ही सखा सहायक होते हैं और देवसंज्ञक विद्वान् **''प्रशिषं यस्य देवाः''** परमदेव भगवान् के प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन न्याय और उसकी एकमात्र आज्ञा को मानते हैं। इसलिए वे भी ईश्वर के समान पुरुषार्थी, विद्यार्थी से विशेष स्नेह करते हैं। इसलिए नीतिकारों ने इस सत्य को इस प्रकार प्रकट किया है-

सुखार्थी चेत्त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी चेत्त्यजेत् सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।।

(चाणक्यनीतिशास्त्र अ० १ श्लोक-३)

प्राचीनकाल में विद्यालयों में इस प्रकार के श्लोक द्वारों पर लगे रहते थे। अर्थात् सुख चाहनेवाले को विद्या कहां एवं विद्या चाहनेवाले को सुख कहां, इसलिए सुख चाहनेवाला विद्या को छोड़ देवे और विद्यार्थी सुख को छोड़ देवे। यहां सुख से अभिप्राय सांसारिक भोग विलास है, जो परिणाम में विष के तुल्य होता है।

सांसारिक विषयभोग के मिथ्या क्षणिक सुख से देव लोग सदैव स्वयं दूर रहते हैं तथा शिष्य ब्रह्मचारियों को भी दूर रखते हैं। किन्तु देव विद्वान् आचार्य ही आनन्दकन्द भगवान् की आनन्दमयी गोद में बैठने का अधिकार प्राप्त करते हैं और मोक्षरूपी आनन्दामृत पान करने का सौभाग्य देवों को ही मिलता है। **''यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त''** अर्थात् जिस सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त मोक्षरूप धारण करनेहारे परमात्मा में मोक्षरूप आनन्दामृत को प्राप्त होके देवसंज्ञक विद्वान् लोग स्वेच्छापूर्वक अपना अधिकार समझते हुये विचरते हैं, क्योंकि उसकी प्राप्ति के लिये संयम, ब्रह्मचर्यव्रत का सेवन देव बनने

के लिए करते हैं। ब्रह्मचर्यरूपी तप से ही वे देव विद्वान् आचार्यपद **"आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः"** को प्राप्त करते हैं। सच्चा ब्रह्मचारी ही यथार्थ में आचार्य होता है और वह अपने शिष्य ब्रह्मचारियों को अपनी सन्तान मान उनका पालन-पोषण करता है, इसलिए आचार्य प्रजापति भी कहलाता है। ब्रह्मचारी ही **"आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते"** अपने शिष्य को ब्रह्मचारी बना सकता है, केवल शब्दों के उपदेश का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, प्रभाव तो आचरण का पड़ता है, इसलिए **"आचारं ग्राहयति इति आचार्यः"** आचार की शिक्षा अपने उच्च आचरण की शिक्षा देकर विद्यार्थी को आचारवान् बनाने से आचार्य संज्ञा को प्राप्त होता है। आचार्य तो यथानाम तथा गुण होता है। इसी ब्रह्मचर्य से देव बनकर महादेव प्रभु को प्राप्त करते हैं।

"यदिछन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति" उस परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा से ब्रह्मचर्य की साधना वा पालन विद्वान् लोग करते हैं, क्योंकि **"तेषामेष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यम्"** ब्रह्मलोक उन्हीं का है, जो ब्रह्मचर्य के पालनार्थ तपस्या करते हैं, अर्थात् तपस्वी ब्रह्मचारी तप करके देव बनकर प्रभु की प्राप्ति करते हैं। क्योंकि देवों का देव परमात्मा स्वयं ब्रह्मचारी है और वह ब्रह्मचारी निष्काम देव विद्वानों का ही **"तच्चक्षुर्देवहितम्"** हितैषी है, हित साधक है। इसलिए अपने हितैषी पूर्ण ब्रह्मचारी प्रभु के प्रशासन **"प्रशिषं यस्य देवाः"** आज्ञा में देव लोग चलते हैं और उसकी छत्र-छाया वा आश्रय को **"यस्यच्छायामृतम्"** अमृत के तुल्य मानते हैं और **"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत"** (अथर्ववेद) ये ही निष्काम ज्ञानी देव लोग ब्रह्मचर्यरूपी तप से मृत्यु को दूर भगाते हैं, मृत्यु को जीत लेते हैं।

ऐसा देव विद्वान् आचार्य जिसने अपने आप को ब्रह्मचर्यरूपी तपस्या की भट्ठी में खूब तपाया है, वह अपने ब्रह्मचारियों को मेखला के व्रतबन्धन से अच्छी प्रकार बांधता है। वह उसे इस प्रकार बांधता है कि वह उन ब्रह्मचारियों के लिए बन्धन नहीं रहती, किन्तु वह आभूषण का रूप धारण कर लेती है, वह मेखला उन ब्रह्मचारियों को सजती है और वे उससे सजते हैं। इसलिए ब्रह्मचारी मस्त होकर कहते हैं कि यह मेखला हमारे आचार्य ने हमारे (आबबन्ध) अच्छी प्रकार बांधी है। यही नहीं, किन्तु (यः संननाह) उस देव ने सुन्दर आभूषण के समान इस मेखला को सजाया है और यह मेखला हमारे साथ (यः युयोज) जिसने संयुक्त की है अर्थात् इस मेखला के साथ सदा के लिए हमारा अटूट सम्बन्ध जोड़ दिया है। हम ब्रह्मचारी इसके साथ जुड़ गये हैं, बन्ध गये हैं और यह मेखला हम ब्रह्मचारियों के साथ जुड़ गई है, बन्ध गई। अब इसके बन्धन को बन्धन नहीं,

किन्तु हम ब्रह्मचारी आभूपण मानने लगे हैं क्योंकि इसके द्वारा हम महान् व्रत, ब्रह्मचर्यव्रत की साधना में सफलता प्राप्त करेंगे, जिससे हम अपने विद्वान् गुरु निष्कामदेव की आज्ञा में रहकर वा चलकर इस भवसागर से पार होजावेंगे। हमारे देव गुरु ने यह मेखला हमें संसार के बन्धनों से, दु:खों से, कष्टों से छुड़ाने के लिए बांधी है। यह मेखला का बन्धन अन्य सब बन्धनों से छुड़ाकर हमें पार ले जायेगा। इसलिये अपने देव गुरु के इस बन्धन को हम ब्रह्मचारी आभूषण मानते हैं क्योंकि इसी के द्वारा ब्रह्मचर्यामृत को पान करके हम देव बनेंगे, मृत्यु को जीतेंगे और अमरपद को प्राप्त करेंगे। पुन: ऐसे देवों के सुन्दर बन्धन को, मेखला को सर्वश्रेष्ठ आभूषण क्यों न मानें? क्योंकि इसी नौका के द्वारा हम सबको आचार्यदेव सब दु:खों से बचाकर भवसागर से पार उतारेंगे।

इस मन्त्र का सार तो यही है कि ब्रह्मचारी हर्षोल्लसित होकर श्रद्धापूर्वक गर्वपूर्ण भाषा में कह रहे हैं, उनकी वाणी ही नहीं हृदयस्थित आत्मा बोल रहा है, हमारे पूजनीय गुरु देवतास्वरूप आचार्य ने हम सबको यह मेखला बहुत ही अच्छी प्रकार से बांधी है, बांधी क्या आभूषण के रूप में सजाई है, यह हमें इतनी प्रिय लगती है कि इससे हम सदैव के लिए संयुक्त होगये हैं, सम्बन्धित होगये हैं। मेखला का बन्धन हमारे लिये बन्धन नहीं, आभूषण है, सजावट है, क्योंकि यह सम्बन्ध हमारे परमहितैषी विद्या और आचार के शिक्षक आचार्य ने इस मेखला से कराया है, फिर यही सम्बन्ध अटूट है। हम इसे कैसे छोड़ सकते हैं। यह हमारे सब प्रकार के बन्धनों को, दु:खों को दूर करने के लिए, सफल जीवन करने के लिए और जीवन के चरमलक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के लिए तथा इस भवसागर से पार उतरकर परमधाम को पहुंचाने के लिये विधिपूर्वक दीहुई मेखला हमारे लिये आचार्यप्रवर का, देवताओं का वरदान है। हम ब्रह्मचारी तो आचार्य के अधीन रहके **''आचार्याधीनो वेदमधीष्व''** नित्य सांगोपांग वेद पढ़ने का व्रत लेचुके हैं, **''आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात्''** हमने सर्वथा सर्वदा के लिऐ आचार्य के अधीन रहते हुए उनकी आज्ञानुसार चलने का व्रत ले रखा है क्योंकि वे धर्मात्मा हैं, आचार के धनी हैं, आचार की साक्षात् आदर्श मूर्ति हैं, वे हमें अधर्म करने का उपदेश तो कभी स्वप्न में भी नहीं देसकते। उन्होंने मेखला को धारण करना तो हमारा नित्यधर्म बतलाया है। फिर इस पवित्र कल्याणकारी मेखला का, जो हमारी ब्रह्मचर्यव्रत की साधिका है, हम कैसे त्याग कर सकते हैं। हमारी कटि पर मेखला बांधकर, सजाकर तो हमें ब्रह्मचर्यपालन की दीक्षा देकर सन्नद्ध कर दिया है, सज्जित कर दिया है। **''कसली है कमर अब तो कुछ करके दिखा देंगे''** अब

कटिबद्ध होकर सच्चे ब्रह्मचारी बनेंगे। "**ब्रह्मचारी असि असौ**" आज से तू ब्रह्मचारी है, ये शब्द हमारे लिये आचार्यदेव ने कहे हैं। क्या हम इसे अपने आचरण से सत्य सिद्ध कर नहीं दिखायेंगे? अवश्यमेव। मेखला धारण करते समय प्रत्येक ब्रह्मचारी ने आचार्य के सम्मुख यह मन्त्र बोला है-

मेखलाधारण का मन्त्र

इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्।।

(पारस्कर गृह्यसूत्र का० २ क० २ सू० ८)

इसी मन्त्र का उच्चारण आचार्य ब्रह्मचारी से करवाकर मेखला धारण कराता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी इसी मन्त्र को बोल तथा बुलवाकर आचार्य के द्वारा पहले से बनाकर रखी हुई सुन्दर चिकनी मेखला बालक के कटि पर बांधने का आदेश दिया है। यह मेखला ब्राह्मण को मुञ्ज वा दर्भ की, क्षत्रिय को धनुष संज्ञक तृण वा वल्कल की और वैश्य को ऊन वा शण की धारण करनी चाहिए, ऐसा संस्कार विधि में लिखा है।

पारस्करगृह्यसूत्र का जो ऊपर मन्त्र दिया है उससे मेखला के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

अर्थ-(इयं मेखला) यह मेखला मुञ्जादि की बनी हुई (स्वसा, सुभगा) भगिनी (बहन) के तुल्य सौभाग्यवती ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली (देवी) दिव्यगुणों वाली है अथवा सुन्दर चमकनेवाली है और (दुरुक्तं) निन्दायुक्त वचन को (परिबाधमाना) सब ओर से हटाती हुई और (वर्णं पवित्रं पुनती) वर्णभाव को पवित्र करती हुई और (प्राणापानाभ्याम्) प्राण और अपान वायु को ठीक रखने के कारण (बलमादधाना) बल को देनेवाली है। (इयम्) यह मेखला (मे) मुझे (आगात्) अच्छी प्रकार से प्राप्त हुई है।

इस मन्त्र में मेखला को बहन के समान हितकारिणी, ऐश्वर्य देनेवाली और दिव्यगुणोंवाली माना है। यह सुन्दर और चमकनेवाली चिकनी होनी चाहिए। चुभनेवाली कुरूप न हो। इसके धारण करने से प्राण और अपान दोनों की गति ठीक होती है। वीर्यरक्षा में सहायक होनेवाली, बल देनेवाली मेखला होती है। ब्रह्मचर्य-पालन से बलवान् होने पर ब्रह्मचारी की सर्वत्र प्रशंसा ही होती है। उसका वर्ण=रंग निखर आता है। मुख पर लाली वा तेज होने से ब्रह्मचारी सबको अच्छा लगता है। उसकी कोई निन्दा नहीं करता। सच्चे ब्रह्मचारी के तेज से निन्दक भी दब जाते हैं। फिर क्यों न ब्रह्मचारी मेखला के प्रति श्रद्धापूर्वक यह वचन कहेगा

कि ''यह मेखला मेरे देवतास्वरूप आचार्यप्रवर ने मुझे मेरे कल्याणार्थ विधिपूर्वक वेद-आरम्भ संस्कार में प्रदान की है। मैं इसको सदैव आभूषण के रूप में धारण करूंगा। क्योंकि मेरे मुख्य व्रत ब्रह्मचर्यसाधना में यह मेरी परम सहायिका है। यह भी यज्ञोपवीत के समान पवित्र है। मेखला बल का भण्डार है, मेरे जीवन का आधार है। इसलिए मुझे यह प्रिय और मुझे इससे प्यार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी द्विज कहलानेवाले वर्णों को पवित्र करके शोभा बढ़ानेवाली है।''

मेखला के नाम

अमरकोष में इसके अनेक नाम दिये हैं-

स्त्रीकट्यां मेखला काञ्ची सप्तकी रशना तथा।।१०८।।
क्लीबे सा रसनं चाथ पुंस्कट्या शृंखलं त्रिषु।।

स्त्रियां जो मेखला धारण करती थीं उसके मेखला, काञ्ची, सप्तकी, रशना (रसना) और नपुंसक लिङ्ग रसनम् पांच नाम हैं। इसको सिञ्जनी और करधनी भी कहते हैं। पुरुषों की मेखला शृंखल या शृंखला भी कहलाती थी। कुछ ग्रन्थकार इस भेद को इस प्रकार मानते हैं-एक (१) लड़ीवाली करधनी को काञ्ची, आठ (८) लड़ीवाली को मेखला, सोलह (१६) लड़ीवाली मेखला को रशना और पच्चीस (२५) लड़ीवाली को कलाप कहते थे। किन्तु यह भेद तब बने होंगे जब स्त्रियां इसे सोने चांदी की मेखला बनवाकर आभूषण के रूप में धारण करने लगीं। पुरुषों की मेखला का नाम शृंखल या शृंखला, शास्त्र में तो कहीं प्रयोग नहीं हुआ है। वेद शास्त्रों में तो सर्वत्र मेखला का प्रयोग हुआ है। ये भेद तथा नाम सब पीछे के प्रतीत होते हैं, जब देवियों ने इसको आभूषण के रूप में धारण किया तभी ये सोने चांदी की बनने लगी होंगी। देवियों में सोने चांदी की मेखला आभूषण के रूप में अब भी प्रचलित है।

शास्त्रों में मेखला

शास्त्रों में तो वर्णभेद से मुञ्जादि की मेखला का वर्णन मिलता है। मनुस्मृति अ० २ में इस प्रकार लिखा है-

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी।। ४२।।

ब्राह्मण को मूञ्ज की तीन लड़ की मेखला बनानी चाहिए। यह मेखला समान, चिकनी और सुखस्पर्शवाली हो, चुभनेवाली न हो, देखने में सुन्दर हो, इसके गुण=लड़ें एकसमान और चिकनी हों।

कुल्लूकभट्ट ने लिखा है-

मुञ्जमयी त्रिगुणा समगुणत्रयनिर्मिता सुखस्पर्शा ब्राह्मणस्य मेखला कर्त्तव्या। क्षत्रियस्य मूर्वामयी ज्या धनुर्गुणरूपा मेखला।

क्षत्रिय को मूर्वा की दो लड़की मेखला पहननी चाहिए। मूर्वा नाम की एक लता होती है जिससे धनुष की डोरी बनती है, इसे चिनार या चुरनहार भी कहते हैं।

वैश्य को शण की तीन लड़ की मेखला धारण करनी चाहिए।

"**वैश्यस्य शणसूत्रमयी**" अर्थात्

शण की डोरी बनाकर उसे त्रिवृत तीन लड़ का (भाण) बट लेना चाहिए।

सामान्यरूप से "**त्रिगुणप्रदक्षिणा मेखला**" मेखला तीन गुणवाली होती है, इसलिए इसका एक नाम 'त्रिगुण' भी है। आज तक रीति भी यही चली आ रही है कि तीन लड़ों की मेखला बांधी जाती है।

मेखला के निर्माण में विकल्प

मनुस्मृति में लिखा है-

मुञ्जालाभे तु कर्त्तव्या कुशाश्मन्तकबल्वजैः।
त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा।।४३।।

यदि उपर्युक्त मुञ्ज आदि न मिले तो मुञ्ज के अभाव में ब्राह्मण को कुशा और क्षत्रिय को मुञ्ज के अभाव में अश्मन्तक और वैश्य को शण के अभाव में बल्वज से मेखला बनानी चाहिए। मेखला त्रिवृता (तीन लड़वाली) होनी चाहिए। मेखला में एक तीन वा पांच ग्रन्थियां होसकती हैं। कुछ का मत ऐसा है कि ब्राह्मण को एक, क्षत्रिय को तीन और वैश्य को पांच ग्रन्थियां लगानी चाहिएं।

जिन मूंजादि से मेखला बनती है उनके गुण निघण्टु में इस प्रकार लिखे हैं-

मूंज के गुण

भद्रमुञ्जः शरो बाणस्तेजनश्चक्षुवेष्टनः।
मुञ्जो मुञ्जातको बाणः स्थूलदर्भः सुमेखलः।। १५०।।
मुञ्जद्वयं तु मधुरं तुवरं शिशिरं तथा।
दाहतृष्णाविसर्पास्त्रमूत्रकृच्छ्राक्षिरोगहृत्।।१५१।।
दोषत्रयहरं वृष्यं मेखलासूपयुज्यते।

भद्रमुञ्ज को रामशर भी कहते हैं। इसके संस्कृत में भद्रमुञ्ज शर बाण तेजन, चक्षुवेष्टन आदि नाम हैं।

मूंज के नाम

मुञ्ज, मुञ्जातक, बाण, स्थूलदर्भ, सुमेखला आदि संस्कृत के नाम हैं। दोनों प्रकार की मूञ्ज मधुर, कषैली, शीतल, वीर्यवर्धक और दाह, तृषा, विसर्प, रक्तदोष, मूत्रकृच्छ्र, नेत्ररोग तथा तीनों दोषों को नष्ट करती है। मुञ्ज की रस्सी से मेखला बनती है इसलिए इसे सुमेखल भी कहते हैं। यह स्तम्भक वीर्य को धारण करनेवाली= वीर्यवर्धक वीर्यरक्षा में सहायक और पुष्टिकारक होती है। जिस भूमि में यह लग जाती, किसान उसे खेती के योग्य समझते हैं।

मुञ्ज के अभाव में ब्राह्मण को कुशा वा दर्भ की मेखला धारण करनी लिखी है।

दर्भद्वयं त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं हिमम्।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीतृष्णाबस्तिरुक्प्रदरास्त्रजित्।।

दर्भ कुशा दो प्रकार की होती है जिसके लम्बे पत्ते होते हैं वह डाभ कहाती है, इसको क्षुरपत्र कहते हैं। इसके गुण ये हैं-कुश और डाभ त्रिदोषनाशक, मधुर कषैले, शीतल और मूत्रकृच्छ्र, पथरी, तृषा, वस्तिरोग, प्रदर (स्त्री का धातुरोग) तथा रुधिरविकारनाशक है। उपर्युक्त गुणों के अनुसार अनेक रोगों को मुञ्ज दर्भ कुशादि की मेखला दूर करके ब्रह्मचारी को निरोग बनाकर ब्रह्मचर्य पालन वा वीर्यरक्षा में सहायता करती है। इसी प्रकार के गुण शण ऊर्णादि में होते हैं।

शण के गुण-यह खट्टा, कषैला, वात कफ के दोषों को दूर करनेवाला, अंग टूटने के रोगों को दूर करता है। आलस्य के दूर करने में शरण की मेखला सहायक है।

ऊन की मेखला ऊनी वस्त्र के समान कटिस्थल की गर्मी को बाहर जाने नहीं देगी और बाहर के गर्म वायु के प्रकोप से कटि की रक्षा करेगी। जिस प्रकार मुञ्ज कुश शण की मेखलाओं के लाभ हैं उसी प्रकार ऊन की मेखला के भी लाभ हैं। तीनों वर्णों की पृथक् पृथक् पहिचान के लिए पृथक् पृथक् वस्तुओं के द्वारा मेखला का निर्माण करना लिखा है। लाभ तो सभी मेखलाओं से होता है।

मेखला का अर्थ

प्रथम अर्थ-मेखला का अर्थ कुछ कोशों में किया है। वाचस्पत्यकोश में ''मि'' धातु से खलच् प्रत्यय गुण और स्त्रीलिंग में टाप् करके मेखला शब्द सिद्ध किया है।

द्वितीय अर्थ-संस्कृत शब्दार्थकौस्तुभ में भी, खल, गुण, टाप्, करके सिद्ध किया है। **''मीयते प्रक्षिप्यते कायमध्यभागे''**। काय=शरीर के मध्यभाग (कटि) में जो बांधी जाती है, उसे मेखला कहते हैं। दोनों के अर्थ एक ही हैं।

तृतीय अर्थ-कुछ विद्वानों के मत में यह अशुद्ध है। श्री पूज्य स्वामी वेदानन्द जी (माम्+ईख्+ला) इस तरह सिद्ध करते हैं। इसमें ईख धातु गत्यर्थक है। आदान अर्थवाली ला धातु से घञ् प्रत्यय भाव में है। अर्थ इस प्रकार बनता है-माम् ईख=गति लाति=आददाति=प्रापयति **''आतोऽनुपसर्गे कः''** से क प्रत्यय हुआ, टाप् स्त्रीलिंग में-मुझे गति, उत्साह, ज्ञान, जागरूकता, पराक्रम शक्ति अर्थात् ब्रह्मचर्य को प्राप्त कराती है।

चतुर्थार्थः-**''मा इह स्खलति अनया इति मेखला।''अनया मेखलया (धारणेन) वीर्यस्खलनं न भवति।**

जिसके धारण करने से वीर्यरक्षा होती है, ब्रह्मचर्य का पालन होता है, उसे मेखला कहते हैं।

पञ्चमार्थः-मां खं ब्रह्म लाति प्राप्नोति या सा मेखला अर्थात् जो मुझे परमात्मा को, मोक्ष को, वेदज्ञान को अथवा ब्रह्मचर्य को प्राप्त करवाती है वह मेखला है।

षष्ठार्थः-**मे**=मम **खानि**=इन्द्रियों को **लाति**=वश में करती है, मुझे जितेन्द्रिय बनाती है, ब्रह्मचारी बनाती है।

सप्तमार्थः-मा=जीवात्मा, ख=परमात्मा, ला=प्रकृति रूपी साधन, इन तीनों का ज्ञान कराती है उसे मेखला कहते हैं।

जिसे धारण करके बालक ब्रह्मचारी विद्वान् बलवान् निरोग स्वस्थ जितेन्द्रिय बनता है और प्रकृति से लेकर परमात्मा पर्यन्त का ज्ञान करके महान् ब्रह्म (बड़ा) बनता है उच्चपद को प्राप्त करता है। जीवात्मा के चरमलक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति करता है। वह शक्ति मेखला प्रदान करती है।

यथार्थ में मेखला ब्रह्मचारी का ही एकमात्र चिह्न है। यह ब्रह्मचर्यव्रत का प्रतीक है। यज्ञोपवीत शिखा तो ब्रह्मचारी गृहस्थ और वानप्रस्थ तीनों ही धारण करते हैं किन्तु मेखला को केवल धारण करने का अधिकारी ब्रह्मचारी ही है। इसे धारण करके ही ऋषि और देवता बनता है। देवतास्वरूप आचार्य ही इसे ब्रह्मचारी को पहनाने प्रदान करने का अधिकारी है और यह योगी देवताओं की माता, श्रद्धा की दुहिता और ऋषियों की स्वसा है। तपस्वी ब्रह्मचारी का व्रतबन्धन आभूषण है। प्राणापान को वश में करानेवाली है। प्राणों के वश में आने से मनादि सभी इन्द्रियां वश में आजाती हैं और ब्रह्मचारी पूर्ण जितेन्द्रिय योगी बनकर, वेदादि सभी शास्त्रों की विद्या में पारंगत हो जाता है, व्यास की पदवी को धारण करता है।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द के शब्दों में मेखला के द्वारा ब्रह्मचर्यव्रत में दीक्षित होकर ऐसे ब्रह्मचारी ही मरणपर्यन्त ब्रह्मचारी रहते हैं। यह बड़ा कठिन काम है कि

जो काम पूर्णविद्यावाले जितेन्द्रिय और निर्दोष स्त्री और पुरुष का है अतः मेखलाधारी ब्रह्मचारी निष्काम देवसंज्ञक ज्ञानी के चरणों में रहकर ही पूर्ण ब्रह्मचारी, पूर्णयोगी बनता है और निर्दोष जितेन्द्रिय बनकर पूर्णतया स्वस्थ होकर पूर्णायु अर्थात् चारसौ वर्ष की दीर्घायु को सुखपूर्वक भोगता है। इस जीवन में भी पूर्ण सुखी जीवन-मुक्त होजाता है और परमपद मोक्ष को प्राप्त होता है। जैसे महर्षि भारद्वाजादि हुए हैं। ब्रह्मचारी भीष्म और गृहस्थ गुरु द्रोणाचार्य थे। महर्षि व्यासादि महाभारत के पतनकाल के समय इसी ब्रह्मचर्यव्रत के कारण दीर्घजीवी हुए हैं। गुरु द्रोण के विषय में लिखा है-

आकर्णपलितः श्यामो वयसाशीतिपञ्चकः।
संख्ये पर्यचरद् द्रोणो वृद्धः षोडशवर्षवत्॥

(महाभारत द्रोणपर्व)

गुरु द्रोणाचार्य जो कानों पर्यन्त पलित (सफेद बाल) था तथा श्याम वर्ण हो गया था। जिसकी आयु ८०×५=४०० वर्ष की पूर्णायु होगई थी वह वृद्ध युद्ध में १६ वर्ष की आयुवाले कुमार के समान स्फूर्ति से लड़ रहा था। इस प्रकार सब ब्रह्मचर्य के कारण ही बलवान् विद्वान् और दीर्घजीवी हुये।

मेखला धारण कराकर अपनी सन्तान को जो ब्रह्मचारी बनाते हैं वे यथार्थ में सच्चे देवता है। महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं-

जो आचार्य और माता-पिता अपने सन्तानों को प्रथम वय (बाल्यकाल) में विद्या और गुण ग्रहण के लिए तपस्वी कर (मेखला धारण करा) और उसी का उपदेश करें और वे सन्तान आप ही आप अखण्डित ब्रह्मचर्य-सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें वैसे तुम भी बढ़ाओ। क्योंकि जो मनुष्य इस ब्रह्मचर्य को प्राप्त होकर लोप नहीं करते वे सब प्रकार के रोगों से रहित होकर, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

इसलिए आचार्य मेखला को धारण कराकर बालक को तपस्वी बनाता है। मेखला ब्रह्मचारी का मुख्य चिह्न है, तपस्या का प्रतीक है, ब्रह्मचर्य का व्रत बन्धन है। सदैव जाकरूक सावधान रहने के लिए मेखला से कटि बांधी जाती है। क्योंकि थोड़ीसी असावधानी से ही ब्रह्मचर्य व्रत टूटजाता है, वीर्य खण्डित होजाता है। ब्रह्मचारी के लिए आलस्य प्रमाद उपेक्षा असावधानी मृत्यु है। सदैव जागरूक सावधान रहनेवाला ही ब्रह्मचर्य में सफलता प्राप्त करता है।

मेखला व कौपीन

मेखला व कौपीन लंगोटी धारण करना एक ही बात है। क्योंकि लंगोटी वा कौपीन मेखला में ही बांधी जाती है। मेखला का मुख्य प्रयोजन कौपीन धारण करना, लंगोट वा लंगोटी पहनना ही है। क्योंकि **''मरद का लंगोट और घोड़े का तंग २४ घण्टे कसा रहना चाहिए।''** यह पूर्ण सत्य है, मरद वा पूर्ण पुरुष वही है जो ब्रह्मचारी हो। अत: ब्रह्मचारी को एक क्षण के लिए भी लंगोट वा कौपीन के बिना नहीं रहना चाहिए। क्योंकि उपस्थेन्द्रिय वा मूत्रेन्द्रिय का संयम ही तो ब्रह्मचर्य है और कौपीन लंगोट उपस्थेन्द्रिय के संयम में परम सहायक है। हरयाणे की लोकोक्ति जो मेखला वा तगड़ी टूट जाने पर बालक चिड़ाने के लिए अपने साथी को कहते हैं, वह इसी सत्य से ओतप्रोत है-**''तग्गड़ तोड़ बाणिये की छोरी''** अर्थात् जिसकी तगड़ी, मेखला टूट जाती है वह दुकानदार की छोरी (लड़की) के समान निर्बल होता है। दुकानदार परिश्रम का कार्य न करने से निर्बल होता है और उस की लड़की और भी अधिक निर्बल होती है। जो मेखला तगड़ी ब्रह्मचर्यव्रत को खण्डित कर देता है, तोड़ देता है वह बणिए की छोरी (लड़की) के समान निर्बल भीरू होता है। मेखला का नाम तागड़ी वा तगड़ी इसलिए है कि इसे धारण करने से, ब्रह्मचारी रहने से तगड़ा सुदृढ़ बलवान् रहता है। **'कौपीनवन्त: खलु भाग्यवन्त:'** कौपीनधारी ब्रह्मचारी ही निश्चय से भाग्यवान् होता है।

लंगोटी का सच्चा सच्चा और लंगोटी का कच्चा कच्चा कहलाता है। धनैश्वर्य विद्या बल सबकी प्राप्ति ब्रह्मचर्य से ही होती है। मेखला कौपीन ब्रह्मचर्य पालन में मुख्य साधन के रूप में प्रयुक्त होती है। लंगोट (कौपीन) व्यर्थ की उत्तेजना से ब्रह्मचारी को बचाता है। मूत्रेन्द्रिय के संयम में अत्यन्त सहायक है।

वीर्यरक्षार्थ सदा कौपीन बांधना, लंगोट को सदैव कसे रहना अत्यन्त श्रेयस्कर और हितकारी है। क्योंकि मूत्रेन्द्रिय की उत्तेजना से वीर्यनाश होता है और कौपीन वा मेखला इसके दूर करने में सहायक है। जागरण तथा शयन के समय दोनों कालों में लंगोट उत्तेजना से बचाता है। मूत्रेन्द्रिय की उत्तेजना से शरीर तथा मन दोनों ही अशान्त होजाते हैं। यह उत्तेजना सर्वनाश का कारण बनती है। जहां लंगोट से यह दूर होती है वहां मन भी शान्त रहता है और ब्रह्मचर्य की साधना में सिद्धि वा सफलता प्राप्त होती है।

मेखला और अन्त्रवृद्धि

लंगोट वा कौपीन बांधने से अण्डकोष नहीं बढ़ते। इस भयंकर रोग से तथा

इसके कष्टों से व्यक्ति सर्वथा बचा रहता है। मेखलाधारण करने तथा लंगोट बांधने से अन्त्रवृद्धि, आंत उतरना (हिरणिया) आदि भयंकर कष्टदायक रोग नहीं होते।

आजकल के पढ़े लिखे शिक्षितलोग मेखला नहीं धारण करते और न ही कौपीन लंगोट बांधते। इसलिए ७५ प्रतिशत शिक्षिकों को अण्डकोषवृद्धि आंत-उतरना (हिरणिया) आदि रोग होते हैं। फिर इनकी शल्यक्रिया (आप्रेशन) कराते हैं एवं इनमें से अधिकतर आप्रेशन सफल न होने से अल्पायु में ही मर जाते हैं। अतः ब्रह्मचारी के तो मेखला और कौपीन भूषण हैं ही किन्तु गृहस्थी को भी लंगोट पहनना सर्वथा हितकर है। लंगोट से अन्त्र-वृद्धि, अण्डकोषवृद्धि, व्यर्थ की कामोत्तेजना से बचना है वहां वीर्यरक्षा वा पुरुषत्व की भी रक्षा होती है। लंगोट से पुरुत्व घटता नहीं बढ़ता है। पुरुष इससे अधिक पवित्र शुद्ध और अत्यन्त संयम का जीवन बिताता है, ये सभी अनुभवी लोगों के अनुभव हैं। बहुत से गृहस्थ मेरे ऐसे मित्र हैं जिन्हें सारी आयु लंगोट बांधने का पक्का स्वभाव रहा है। जो चौबीस घण्टे लंगोट रखते हैं, पूर्ण स्वस्थ और अनेक पुत्रों के पिता हैं।

लंगोट वा कौपीन कैसी हो ?

लंगोट वा कौपीन बारीक वस्त्र की होनी चाहिए, यह दोहरा कपड़े की न हो, किन्तु एकहरा वस्त्र की ही होनी चाहिए। कुश्ती करने का दोहरा लंगोट वा जांघिया ब्रह्मचारी वा अन्य किसी गृहस्थी को भी हर समय नहीं पहनना चाहिए। क्योंकि उससे अधिक उष्णता (गर्मी) बढ़ने के कारण वीर्यनाश की संभावना रहती है। मैली वा गन्दी कौपीन वा लंगोट भी हानिकारक है। अतः प्रत्येक ब्रह्मचारी के पास न्यून से न्यून दो कौपीन होनी चाहिएं जो बारीक वस्त्र की शुद्ध तथा पवित्र धुली हुई हों।

मेखला धारण कराकर आचार्य युवा ब्रह्मचारी को वेदारम्भ संस्कार में वस्त्र भी धारण कराते हैं और यह मन्त्र भी बोलते हैं–

युवा सुवासा परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः।।

पारस्कर गृह्यसूत्र २।२।९

अर्थात् दृढ़ शरीरवाला, स्वच्छ वस्त्रधारण करनेवाला यज्ञोपवीत मेखला आदि से परिवेष्टित ब्रह्मचारी सम्मुख प्राप्त होता है, वैसी ही स्थिति करता हुआ वह लोगों का कल्याण करनेवाला होता है। बुद्धिपूर्वक कार्यकर्ता, पूर्वापरदर्शी अच्छे ध्यानवाले, मन से देवभाव की कामना करनेवाले विद्वान् उस ब्रह्मचारी को सद्गुणयुक्त शिक्षा-प्रदान से उन्नत करते हैं।

इस विषय में महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं-"इस मन्त्र को बोल के दो शुद्ध कौपीन, दो अंगोच्छे और एक उत्तरीय (चद्दर) और दो कटिवस्त्र आचार्य ब्रह्मचारी को देवे। उन में से एक कौपीन, एक कटिवस्त्र और एक उपन्ना बालक को आचार्य धारण करावे।"

आचार्य स्वयं कौपीन धारण करता है तथा दो कौपीन ब्रह्मचारी को देता है। इससे यही सिद्ध होता है कि ब्रह्मचारी का कौपीन सदैव धारण करने योग्य वस्त्र है।

तगड़ी को धारण करनेवाला सदैव तगड़ा सुदृढ़ रहता है। ब्रह्मचारी को सदैव मेखला तथा कौपीनधारी होना चाहिए। बिना मेखला वा कौपीन के उसे एक क्षण भी नहीं रहना चाहिए।

मेखला टूटने पर क्या करें ?

मनु जी लिखते हैं-

मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कामण्डलुम्।
अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत्।।

(मनुस्मृति १-१६४)

मेखला आदि के विनष्ट होने पर इन्हें जल में फैंक देवें और मन्त्र बोलकर नवीन धारण कर लेवें।

जहां ब्रह्मचर्य पालन में मेखला और कौपीन सहायक हैं वहां इनके धारण करने से स्फूर्ति रहती है, आलस्य दूर भागता है, व्यक्ति जागरूक रहता है, कार्य करने के लिए सदैव कमर कसी रहती है, लंगोट के बांधने से चलने फिरने दौड़ने परिश्रम व व्यायाम करने में सुविधा तथा गुप्त व मर्मस्थान की विशेष सुरक्षा रहती है। दो कौपीन आचार्य इसलिए देता है कि ब्रह्मचारी प्रतिदिन स्नान करते समय एक कौपीन को धोकर सुखा देवे तथा दूसरी शुद्ध कौपीन को तुरन्त धारण कर लेवे।

मेखला की गांठें

त्रिवृत्ता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा। (मनुस्मृति २.४३)

मेखला तीन लड़वाली होती है और इसमें एक तीन वा पांच गांठें होती हैं। यहां गांठों का विकल्प है चाहे एक गांठ हो या तीन अथवा पांच गांठें हों। यहां कोई स्पष्ट विधान नहीं कि किसको कितनी गांठें लगानी चाहिएं। कुछ टीकाकारों का मत है कि एक ब्राह्मण को, तीन क्षत्रिय को और पांच गांठें वैश्य को मेखला में लगानी चाहिएं। अथवा एक तीन वा पांच यथेच्छ लगावें।

गांठों के लाभ

कुछ अनुभवी ब्रह्मचारियों का यह मत है कि गांठें पीठ के पीछे लगानी चाहिएं जिससे ब्रह्मचारी सीधा सोने की भूल न करें। क्योंकि सीधा सोने से स्वप्न आते हैं और हाथ छाती पर पड़ने से दबकर सोनेवाला अधिक स्वप्न देखता है तथा बड़बड़ाने भी लगता है। ब्रह्मचारी की निद्रा बिना स्वप्न की गहरी तथा गाढी होनी चाहिए। उस समय स्वप्न कदापि नहीं आने चाहिएं। मेखलाधारी ब्रह्मचारी की कमर में मेखला की लगी हुई गांठें उसे कदाचित् सीधा न सोने देंगी, वे चुभेंगी और नींद टूट जायेगी। इस प्रकार ब्रह्मचारी स्वप्नों से बच जायेगा। निद्रा में स्वप्न आने से यदि स्वप्न गन्दे हों तो स्वप्नदोष से ब्रह्मचर्य नष्ट होजाता है। जहां जागृत अवस्था में मेखला प्राणापान की गति को ठीक करके वीर्यगति को ऊर्ध्व करके ब्रह्मचारी को ऊर्ध्वरेता बनाती है वहां निद्रा में स्वप्नों से बचाकर स्वप्नदोष रोग के द्वारा वीर्यनाश से बचाती है। गांठें चुभने से ब्रह्मचारी सीधा सोना छोड़ देता है और दायीं करवट पर होकर स्वप्नों तथा वीर्यनाश से बच जाता है। "**ब्रह्मचारी की निद्रा**" नामक मेरी पुस्तक में इस पर विस्तार से लिखा है, वहां देख लेवें।

इस प्रकार मेखला दोनों अवस्थाओं में स्वसा=बहन और दुहिता=पुत्री के समान ब्रह्मचारी को वीर्यनाश से बचाकर पवित्र करती है तथा उसका हित सोचती है। यह ब्रह्मचारी को वीर्यवान् बनाकर वीर और बलवान् भी बनाती है। "**जो जागत है सो पावत है जो सोवत है सो खोवत है।**" हरयाणा की लोकोक्ति "**जागते की कटिया, सोवते का काटड़ा**" के अनुसार जागनेवाला लाभ उठाता है और सोनेवाला हानि।

वेद भगवान् ने इस सत्य को इस प्रकार कहा है-

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योका।।

(ऋग्वेद ५।४४।२४)

जो जागता है उसी को ऋक् ज्ञान चाहता है, उसे यजु कर्मकाण्ड और साम उपासना में सफलता की सिद्धि मिलती है। जो जागता है उसे स्वयं सुख की वर्षा करनेवाला सोमरूप प्रभु स्वयं कहता है कि मैं तुम्हारा सखा हूं, मित्र हूं, मैं तेरे साथ रहूंगा। मैं और तूं एक साथ एक ही घर में रहेंगे। निष्कर्ष यह है कि सब कुछ जागनेवाले का है। यह लोक और परलोक सब जागनेवाले का ही है। मेखला आचार्यदेव ने ब्रह्मचारी को जागरूक रहने के लिए ही तो बांधी है। जागृतावस्था में ही नहीं, निद्रा में भी सावधान रहने के लिए मेखला के पवित्र व्रतबन्धन में

ब्रह्मचारी की कमर बांधी है, सजाई है। इसकी तीन लड़ें यही शब्द सुना रही हैं जागते रहो। स्वप्न में भी जागते रहो। गाढ़ निद्रा में भी जागते के समान रहो, कदापि असावधान न रहो। असावधानी ब्रह्मचारी की मृत्यु है और जागरूकता ब्रह्मचारी के लिए जीवन है। यही मेखला का सार है। नीतिकारों ने भी इस भाव को यों प्रकट किया है-

काकचेष्टा वकध्यानं श्वाननिद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पञ्चलक्षणम्।।

अर्थात् काक के समान चेष्टा करनेवाला, सदैव जागरूक एवं सावधान रहनेवाला, बगुले के समान अपने लक्ष्य को ध्यान में रखनेवाला और कुत्ते के समान निद्रावाला अर्थात् सोते समय भी इतना सावधान हो कि जब चाहे उठ जावे, सदैव अल्पभोजन करनेवाला अर्थात् मिताहारी भूख रहकर खानेवाला हो। विद्यार्थी जीवन में कभी भी घर में मोह न रक्खे, विद्यासमाप्तिपर्यन्त आचार्य की चरणछाया में रहनेवाला, जब तक विद्या पूर्ण न हो तब तक गुरुकुल में ही वास करे। निष्कर्ष यह है कि उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते और जागते सदैव सभी अवस्थाओं में जागरूक और सावधान रहनेवाला ब्रह्मचारी ही ब्रह्मचर्यपालन में सफल होता है। मेखला निरन्तर श्रद्धापूर्वक और दीर्घकाल अर्थात् जीवन के अन्तिम क्षण पर्यन्त सावधान रहने के लिए ही कटि पर आचार्य द्वारा बांधी जाती है। मरने पर शव पर से मेखला को खोल लेते हैं ऐसा देखने में आता है। जीवनकाल में बिना मेखला के देखने पर बालक हरयाणे में अनेक प्रकार के कटुवचन बोलकर अथवा गाली देकर परस्पर चिड़ाते हैं। जैसे-

''तनिया न तागड़ी हमारा साला बागड़ी''

जिसके तनिया लंगोट और तागड़ी मेखला नहीं होती है वह बागड़ी (मरुभूमि के निवासी) के समान भूखा ऐश्वर्यहीन और दुःखी रहता है। अतः बिना मेखला (तागड़ी) के तथा लंगोट के बिना (तनिया रहित) कभी नहीं रहना चाहिए। क्योंकि तनिया तनु शरीर को तन्दरुस्त (स्वस्थ) और तागड़ी शरीर को तगड़ा बलवान् सुदृढ़ स्वस्थ रखती है।

वीरों की मेखला

आहुतास्यभिहुता ऋषीणामस्यायुधम्।
पूर्वा व्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भव मेखले।।

(अ० ३।१३३।२)

(मेखले) हे मेखला! तू (आहुता) यथाविधि दान की गई (असि) है। (ऋषीणाम्) धर्ममार्ग बतानेवाले ऋषियों का (आयुधम) शस्त्ररूप (असि) है। (व्रतस्य) उत्तम व्रत या नियम के (पूर्वी) पहले (प्राश्नती) व्याप्त होनेवाली और (वीरघ्नी) वीरों को प्राप्त होनेवाली तू (भव) हो।

मेखला को अपनी इच्छा से कोई स्वयं धारण नहीं करता था। इसे निष्काम सेवक, चारों वेदों के ज्ञाता, देवसंज्ञक विद्वान् आचार्य वेदारम्भ संस्कार में अपने शिष्य ब्रह्मचारी को यथाविधि ब्रह्मचर्यव्रत की दीक्षा देते हुए प्रदान करता था। विधिपूर्वक आचार्य की ओर से ब्रह्मचारी को मेखला का दान होता था।

ब्रह्मचर्यव्रत की दीक्षा देने से पूर्व आचार्य मेखला को ब्रह्मचारी की कटि पर प्रतिज्ञापूर्वक बांधता था और उसे सावधान करता था कि तू आज से ब्रह्मचारी है। मेखला के द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत के बन्धन में तुझे मैं आज बांधता हूँ। मेखलाबन्धन ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेते समय सर्वप्रथम क्रिया होती है। ब्रह्मचर्यव्रत में दीक्षित होने का मेखला पूर्वरूप थी। इस बन्धन से ही ब्रह्मचर्यव्रत का प्रारम्भ होता था। ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का व्रत लेते समय सर्वप्रथम आचार्य मेखला का दान करके ब्रह्मचारी की संज्ञा देता था तथा अन्य नियमों का पीछे उपदेश करता था।

वेद भगवान् ने मेखला को ऋषियों का आयुध, शस्त्र, रक्षा का साधन बताया है।

मेखला को धारण करनेवाले वीर होते हैं। अथवा इसे वीरपुरुष ही धारण कर सकते हैं वा धारण करते हैं। वीरों का यह भूषण है। कायर, भीरू इसे धारण नहीं कर सकते। इसलिए वेद ने इसे वीरों को प्राप्त होनेवाली बताया है।

देवों और ऋषियों में भेद

पहले मन्त्र में देव संज्ञक विद्वान् आचार्य का मेखला का देने वाला बताया है और इस मन्त्र में धर्म का मार्ग बतानेवाले ऋषियों का मेखला को आयुध वा शस्त्र बताया है। देव तथा ऋषियों में क्या अन्तर है, इस पर बोधायनगृह्यसूत्र (प्र० १ अ० १) में अच्छा प्रकाश डाला है।

सात प्रकार के विद्वान्

(१) ब्राह्मण, श्रोत्रिय, अनूचान, ऋषिकल्प, भ्रूण, ऋषि और देव, इन सात प्रकार के विद्वानों का भेद माना है।

१. ''उपनीतमात्रो व्रतानुचारी वेदान् किंचिदधीय ब्राह्मणः''

अर्थात् जिस का केवल यज्ञोपवीत हुआ है, जो ब्रह्मचर्यादि व्रत का पालन करता है तथा जिसने वेदों का कुछ भाग पढ़ा है, वह ब्राह्मण है। यह प्रथम प्रकार का विद्वान् होता है। जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। वेद पढ़ने से ब्राह्मण कहलाता है।

२. **''एकां शाखामधीय श्रोत्रियः''**

ऊपर लिखे अनुसार यज्ञोपवीतधारी ब्रह्मचारी वेद की एक शाखा पढ़ने से श्रोत्रिय कहलाता है।

३. **''अङ्गाध्याय्यनूचानः''**

ऊपरलिखित नियमपालन करनेवाला ब्रह्मचारी अङ्गोंसहित वेद पढ़ने से अनूचान कहाता है।

४. **''कल्पाध्यायी ऋषिकल्पः''**

कल्पसहित वेद पढ़ने से विद्वान् की ऋषिकल्प संज्ञा हो जाती है।

५. **''सूत्रप्रवचनाध्यायी भ्रूणः''**

सूत्रभाष्य के साथ वेद पढ़ने से भ्रूण संज्ञावाला विद्वान् होता है।

६. **''चतुर्वेदादृषिः''**

चारों वेदों का अध्ययन करने से अथवा चारों वेदों का विद्वान् होने से विद्वान् ऋषि संज्ञा को प्राप्त होता है।

७. **''अत ऊर्ध्वं देवाः''**

ऋषियों से भी जो अधिक ऊंचा हो अर्थात् अधिक विद्वान् और परोपकारी हो वह देव कहलाता है। सांगोपांग एक-एक वेद पढ़ने में १२ (बारह) वर्ष ब्रह्मचारी को लग जाते हैं। जो ४८ वर्ष से भी अधिक ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करके चारों वेदों का विद्वान् बनता है, पूर्ण विद्वान्, पूर्ण योगी, पूर्ण जितेन्द्रय होता है और अपना सर्वस्व **''परोपकाराय सतां विभूतयः''** प्राणिमात्र के कल्याणार्थ न्यौछावर कर देते हैं ऐसे सदाचारी विद्वान् को देव कहते हैं, ऐसे ऋषि वा देव कैसे बनते हैं?

ऋषि और देवों का निर्माण

मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।। (शत० १४।५।८।२)

वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य है, वह संतान बड़ी भाग्यवान् है, जिसके माता-पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है, उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित चाहती है, उतना कोई नहीं चाहता। पहले सन्तान को विद्वान् और

श्रेष्ठ बनाने के लिए माता पिता तपश्चर्या किया करते थे। इस पर भी बौधायन गृह्यसूत्र (१।७) में प्रकाश डाला गया है। सामान्य विद्वान् बनाने के लिए सामान्य तपश्चर्या किया करते थे और विशेष श्रोत्रिय आदि विद्वान् बनाने के लिए विशेष ब्रह्मचर्यादिव्रतों का सेवन करना आवश्यक था। जैसे-

अथ यदि कामयेत श्रोत्रियं जनयेयमिति आ अरुन्धत्युपस्थानात् कृत्वा त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनावधश्शायिनौ ब्रह्मचारिणावासाते।। १।।

यदि पति-पत्नी की यह इच्छा हो कि हम श्रोत्रिय बननेवाला विद्वान् उत्पन्न करें तो तीन दिन तक पति-पत्नी क्षारलवणरहित भोजन करें, भूमि पर (नीचे) शयन करें और ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करें। अग्निहोत्र करके, "**चतुर्थ्यामुपसंवेशनं वा**" चौथी रात्रि गर्भाधानार्थ वीर्यदान देवें। इसी प्रकार सभी प्रकार के विद्वान् उत्पन करने के लिए पति-पत्नी को तपस्या करनी पड़ती थी। अनूचान उत्पन्न करने के लिए पति-पत्नी को १२ दिन का ब्रह्मचर्यव्रत पालन तथा भ्रूण विद्वान् उत्पन्न करने के लिए चार मास तक उपर्युक्त क्षारलवणरहित भोजन भूमिशयन की तपश्चर्या करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करना होता था, फिर गर्भाधान करते थे।

ऋषि उत्पन्न करने के लिये और अधिक समय तक तपश्चर्या और ब्रह्मचर्य का पालन करते थे।

देवों की उत्पत्ति

"**यदि कामयेत देवं जनयेयमिति संवत्सरमेतद् व्रतं चरेत्**" यदि देव नाम के विद्वान् उत्पन्न करने की इच्छा हो तो एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन पति-पत्नी दोनों करते थे, भूमिशयन क्षारलवणरहित भोजन करना आवश्यक था। तब होम आदि करके सन्तान उत्पन्न करने के लिए वीर्यदान या गर्भाधान करते थे। तब माता-पिता को देवतुल्य सन्तान प्राप्त होती थी। ऐसी तैयारी से, तपस्या से उत्पन्न की हुई सन्तान वेदादि शास्त्र पढ़कर ऋषि वा देव बनती थी। इसी सिद्धान्त के अनुसार पूर्ण युवावस्था में देवी अञ्जना और महात्मा पवन का विवाह हुआ था। विवाह के पश्चात् भी उन दोनों पति-पत्नी को २० वर्ष तक कठोर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना पड़ा, उसी के फलस्वरूप देवरत्न हनुमान् जैसे योद्धा का उनके गृह में जन्म हुआ था। इसी प्रकार धर्मात्मा योगिराज श्रीकृष्ण ने अपने समान पुत्र की कामना से तपस्या की थी।

व्रतं चचार धर्मात्मा कृष्णो द्वादशवार्षिकम्।
दीक्षितं चागतौ द्रष्टुमुभौ नारदपर्वतौ।।

(मह० अनु० अ० १३९१ श्लोक १०)

महादेवी रुक्मिणी से विवाह के पश्चात् महराज योगिराज श्रीकृष्ण जी ने गृहस्थ में प्रवेश नहीं किया और विष्णु पर्वत पर उपमन्यु ऋषि के आश्रम में १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया। क्षारलवणरहित भोजन और भूमि पर शयन किया, उस समय उनको नारदादि अनेक ऋषि देखने आये थे। इस व्रतपालन के फलस्वरूप अपने अनुरूप प्रद्युम्न नाम का तेजस्वी पुत्र उन्हें प्राप्त हुआ था।

प्राचीनकाल में ऋषि और देव आदि विद्वान् उत्पन्न करने के लिए गृहस्थ ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके घोर तपस्या करते थे। विद्वान् बनकर ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की समाज वा राज्य से आज्ञा मिलती थी। मनु की व्यवस्थानुसार-

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्।।

(मनु० ३।२)

जब यथावत् ब्रह्मचर्य आश्रम में आचार्य की आज्ञानुसार वर्तते थे और चारों तीन दो वा एक वेद को सांगोपांग पढ़के जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो वह पुरुष वा स्त्री गृहस्थ में प्रवेश करे। वेदों का विद्वान् और ब्रह्मचारी व्यक्ति चाहे स्त्री हो, वा पुरुष वही गृहस्थ में प्रवेश का अधिकारी होता था। इसीलिए उनकी सन्तान ऋषि महर्षि देव और महादेव बनती थी।

इसलिए मेखला को ऋषियों का आयुध (रक्षार्थ शस्त्र) बताया है। शस्त्र शत्रुओं से युद्ध करने के लिए होता है। ऋषियों और देवताओं के शत्रु काम-क्रोधादि होते हैं। गीता में इन शत्रुओं की इस प्रकार चर्चा की है-

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।। १६।२१

आत्मा का नाश करनेवाला नरक का यह तीन प्रकार का द्वार है-काम क्रोध और लोभ। इसलिए इन तीनों को छोड़ देवें। क्योंकि-

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयः ततो याति परां गतिम्।। १६।२२

हे कुन्तिपुत्र! मनुष्य इन तीन तमोगुण के द्वारों से छूटा हुआ अपना कल्याण करता है, फिर वह परमगति को प्राप्त होता है। इन्हीं शत्रुओं के साथ देवता और ऋषि लोग युद्ध करने के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि इस अष्टांग योग की साधना करते थे। इन शत्रुओं के दमन के लिए यही शस्त्र वा आयुध थे और मेखला इन शस्त्रों का प्रतीक मात्र है। इनसे युद्ध करने के लिए सदैव जागरूक रहना पड़ता था। सदा सज्जा, सदैव सावधानी, सदैव कटिबद्ध

रहने के लिए मेखला कटि पर बांधी जाती थी। सब शत्रुओं के महासेनापति काम से युद्ध करने के लिए ब्रह्मचर्यव्रत था। मेखला इस साधना की प्रतीक है, इसलिए ऋषियों ने इसे आयुध कहा है। क्योंकि प्राण और अपान वायु की गति को ठीक करने, वश में करने में, यह सहायक है। प्राणापान को जीतने से चंचल मन वश में आता है। मन के वश में आने से साधक जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी बन वीर्य को धारण करता है। वीर्यवान् ही बलवान् होता है। क्योंकि **''वीर्यं वै बलम्''** वीर्य ही सब शक्तियों और सर्वप्रकार के बलों का भण्डार है, इसीलिए आचार्य अपने ब्रह्मचारी कुमार के मुख से मेखला बांधता हुवा यह उच्चारण करवाता है-**''प्राणापानाभ्यां बलमादधाना''** प्राणापान के द्वारा मेखला बल को देनेवाली है। इसे श्रद्धा से धारण कर, यही **''ऋषिणामस्यायुधम्''** ऋषियों के व्रतों की रक्षार्थ और कामादि शत्रुओं के दमनार्थ अमोघ अस्त्र है, इसे धारण कर। ब्रह्मचारी! यह तेरे व्रत की तथा तेरी शत्रुओं से रक्षा करेगी। इससे भय खाने की आवश्यकता नहीं। यह दिव्य गुणों का भण्डार है। यह तुझे वीर बनायेगी, क्योंकि ब्रह्मचारी वीर्यवान् होकर ही वीर बनते हैं। यह तेरी रग-रग और रोम-रोम में वीरता को कूट-कूटकर भर देगी। तुझे ब्रह्मचारी, वीर्यवान्, बलवान्, जितेन्द्रिय और योगी बनायेगी। ऋषि लोग इसी को धारण करके ऊंचे उठे थे, काम क्रोध और लोभ आदि नरक के द्वारों को, घोर शत्रुओं को जीतकर परमगति मोक्ष को प्राप्त हुए थे। इस युद्ध के लिए और कोई आयुध नहीं। मेखला बांध, तपस्या कर, ब्रह्मचर्यपालनार्थ प्राणापान की साधना कर। यह मेखला सब कार्यों में आयुध (अमोघास्त्र) के समान तेरी रक्षा करेगी। ऐसी बात सुनकर मत डर।

शीष कटाना है सहज, घड़ी एक का काम।
आठ पहर का जूझना, बिना खाण्डे संग्राम।।

शीष काटने का युद्ध तो एक घड़ी में समाप्त होजाता है। किन्तु यह कामादि शत्रुओं के साथ तो न समाप्त होनेवाला आठ पहर का युद्ध है। इस युद्ध में तीर, तलवार खाण्डा भी कुछ कार्य नहीं करता। इस भयानक युद्ध में तो जीवन के अन्तिम क्षण तक लड़ना है। इसका आयुध **(प्राणायामः परं तपः)** प्राणायामादि परम तप है, जिसकी साधना में तेरी बहन स्वसा देवी मेखला तुझे सौभाग्य प्रदान करेगी, उसी का सहारा ले, बहन से बढ़कर, भगिनी से अधिक तुझे कौन चाहेगा, तेरा हित कौन करेगा। इस स्वसा के प्रेम में सत्यता है, छल नहीं, कपट नहीं, स्वार्थ नहीं। यह तेरे लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देगी। तेरा बाल बांका नहीं होने देगी, कष्टों से छुड़ायेगी, भवसागर से पार लेजायेगी, घबराना नहीं। यह पवित्र

देवी सब प्रकार का सौभाग्य तुझे देगी। इसे पवित्र रखना, इससे सदैव संयुक्त रहना, यह तेरे देवगुरु आचार्य का दिया हुआ उपहार है, इसे तोड़ना नहीं, फैंकना नहीं। इसी में तेरा कल्याण है, तेरी विजय है। गुरु महाराज ने यह मेखला तो मृत्यु से युद्ध करने के लिए बांधी है।

आग सेकना है सहज, सहज खड्ग की धार।
नेह निवाहण एक रस, महाकठिन व्यवहार।।

इसे बांधकर आचार्य ने तेरे अन्दर वीरता का मन्त्र फूंका है। जलती हुई आग में कूदना, खड्गों की खनखनाहट में घुस जाना तो वीर लोग हंसते-हंसते कर डालते हैं। इस कार्य को तो बहुत से वीर हैं जो बड़ा सरल और सहज कार्य ही समझते हैं। किन्तु सारी आयु काम क्रोधादि शत्रुओं के प्रहारों से विचलित न होकर इससे जूझते रहना, लड़ते रहना, अन्त में इस महाकठिन युद्ध में विजय को प्राप्त करन, यह बिरले वीरों का ही कार्य है। इस महाकठिन संग्राम को ब्रह्मचारी ही लड़ते हैं। इसमें उनको दिया कवच वा अमोघास्त्र मेखला तो है ही किन्तु और भी कुछ शस्त्र हैं जिन्हें ब्रह्मचारी को आचार्यप्रवर प्रदान करता है।

मृत्यु का ब्रह्मचारी

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाम।
तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि।।

(अथर्व० ६-१३३-३)

(भूतात्) प्राप्त (मृत्योः) मृत्यु से (पुरुषं) इस पुरुष आत्मा को (निर्याचन्) बाहर निकालता हुआ (अहं) मैं (यमाय) नियम पालने के लिये (यत्) जो (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी (अस्मि) हूं (तं) वैसे (एनं) इस आत्मा को (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान (तपसा) तप योगाभ्यास और (श्रमेण) परिश्रम के साथ (अनया मेखलया) इस मेखला से (अहं) मैं (सिनामि) बांधता हूँ।

दूसरा अर्थ इस प्रकार है-

(यत्) क्योंकि (अहम्) मैं (मृत्योः) आदित्य के समान तेजस्वी विद्वान् का अर्थात् अज्ञान के बन्धन से मुक्त करनेवाले आचार्य का ब्रह्मचारी हूं। इसलिए (भूतात्) इस पञ्चभूत के बने देह से (यमाय) उस ब्रह्म सर्वनियन्ता परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (पुरुषम्) देहपुरी के निवासी आत्मा को (निर्याचन् अस्मि) मुक्त करने के यत्न में हूं। हे आचार्य! ऐसे (तम्) उसे (एनम्) इस आत्मा को (अहम्) मैं आपका शिष्य ब्रह्मचारी (ब्रह्मणा) ब्रह्म वेदोपदेश से (तपसा) तप योगाभ्यास

से (श्रमेण) व्यायामादि के श्रम से (अनया मेखलया) इस मेखला से (सिनामि) बांधता हूं।

दोनों प्रकार के अर्थों में भावना एक ही है। यहां आचार्य का मृत्यु नाम से स्मरण किया है और ब्रह्मचारी कहता है मैं मृत्यु आचार्य का ब्रह्मचारी हूं। उस आचार्य की शिक्षा से संयम का जीवन बिताकर अपनी आत्मा को उन्नत करके परमेश्वर को प्राप्त करूंगा अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करूंगा। इसके लिए ही मैंने आचार्य से मेखला धारण की है, लंगोट कसा है, मैं कौपीनधारी बना हूं। ब्रह्मचर्यव्रत की पूर्ति के लिए मेखला धारण कर जहां दीक्षा ली है वहां देवविद्या, ज्ञान अर्जन, योगाभ्यास, तपश्चर्या, व्यायाम, प्राणायाम आदि ब्रह्मचर्य के मुख्य साधनों की साधना में आचार्यचरणों में रहकर जुटा हूँ। मेरे तो आचार्य साक्षात् स्वयं मृत्यु नाम के आचार्य हैं, उन्होंने मुझे मृत्यु का रहस्य भलीभांति समझा दिया है। मुझे अब मृत्यु का भय है ही नहीं। क्योंकि जिस मृत्यु से सब डरते हैं मैं तो उस मृत्यु को दूर भगाने के लिए, उसे जीतने के लिए देव बन रहा हूँ। मेरे गुरुदेव साक्षात् देवता हैं। उन्होंने मुझे मेखला बांधकर संयम के जीवन से जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी बनाकर मृत्यु को ठोकर मारने के लिए ब्रह्मचर्यरूपी तप की भट्ठी में तपाकर मृत्युंजय बना दिया है, मैं वेद भगवान् की इस आज्ञा को "**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युपाघ्नत**" पालन करने में मृत्यु आचार्य की कृपा से समर्थ होगया हूँ।

मृत्यु नाम आचार्य का यहां इसलिए लिया है कि वह मृत्यु का यथार्थज्ञान कराकर मृत्यु के भय को भगानेवाला है। मृत्यु का भय तब तक ही लगता है जब तक मनुष्य इनके सच्चे स्वरूप को समझ नहीं लेता है। गीता में इसका अच्छा चित्रण किया है-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।१३।२२।।

जैसे मनुष्य पुराने कपड़े को छोड़कर और नये पहन लेता है, वैसे ही शरीरधारी पुराने शरीरों को छोड़कर और नये शरीरों को धारण कर लेता है। पुरानी वस्तु के स्थान पर नयी वस्तु मिलने पर हर्ष ही होता है पुनः दुःख और भय किसलिए? यह भाव जब मनुष्य समझ लेता है तो दुःख और भय का कारण ही नहीं रहता। इस जीवन की चिन्ता छोड़कर नये जीवन में नई भोग-सामग्री प्राप्त कराना मृत्यु का कार्य है, यह सुख की धारणा है। इसी शिक्षा से शिक्षित व्यक्ति मस्त हो कहता है-

जिस मरने से जग डरे मोको सो आनन्द।
कब मरिये कब पाईये पूरन परमानन्द।।

मृत्यु तो नये जीवन का नाम ही है और मोक्ष के परमानन्द की प्राप्ति भी इससे ही होती है। अतः मृत्यु नाम आचार्य का सुखप्रद है, भयावह नहीं है।

उपनिषद् मैं नचिकेता (सन्देहशून्य) ब्रह्मचारी भी यम (मृत्यु) नाम के आचार्य के पास ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए गया था।

इस वेद मन्त्र में भी मृत्यु नाम का आचार्य अपने ब्रह्मचारी को सब प्रकार के कष्टों, दुःखों और बन्धनों से छुड़ानेवाला है तथा मोक्ष तक पहुंचानेवाला है। मेखला, वेदज्ञान, तप, योग और परिश्रम व्यायामादि ब्रह्मचर्य के मुख्य साधनों वा नियमों में बांधकर, उनकी शिक्षा देकर ब्रह्मचारी को मृत्युञ्जय बनाना ही आचार्य का मुख्योद्देश्य है।

एक अन्य मन्त्र में ब्रह्मचर्यसूक्त में भी आचार्य के अनेक नामों में मृत्यु भी उसका नाम आया है-

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः।

मृत्यु वरुण और सोम ये सभी आचार्य के गुणों के अनुसार नाम हैं।

अथर्ववेद के ब्रह्मचर्यसूक्त में एक मन्त्र मेखलासम्बन्धी इसी प्रकार का आया है-

इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्त्ति।।

(अथर्व० ब्रह्मचर्यसूक्त)

यह पृथिवी ब्रह्मचारी की प्रथम समिधा है। यह द्यौ दूसरी समिधा है और तीसरी समित् अन्तरिक्ष है। इन तीनों समिधाओं द्वारा अर्थात् इन तीन समिधाओं का अपनी आत्माग्नि में आधान कर ब्रह्मचारी सबका पालन करता और पूर्ण करता है। ब्रह्मज्ञान में दीक्षित ब्रह्मचारी समित् आधान द्वारा, मेखला द्वारा, श्रम और तप द्वारा समस्त मनुष्यों का पालन करता है और इन्हीं साधनों के द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इस मन्त्र में समिधा शब्द है, मेखलासूक्त के मन्त्र में ब्रह्मणा शब्द है, अर्थ दोनों का एक ही है। ज्ञान का प्रकाश, वेदज्ञान की दीप्ति वा पवित्र ज्योति द्वारा वह अपने आपको तथा सारे संसार को प्रकाशित करता है। पृथिवी अन्तरिक्ष और द्यौ इन तीनों लोकों का ज्ञान करके संसार में ज्ञान का प्रकाश फैलाता है। जहां वह इन तीन बाह्यलोकों का अध्ययन करता है, जानने का यत्न करता है वहां अपने तीनों लोकों शरीर, अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) और आत्मा का भी साक्षात्कार करता है। वह वेदज्ञान के द्वारा अपने अन्दर तथा बाहर के अविद्या अन्धकार को दूर भगाता है। भूत, भविष्य और वर्तमान रहस्यों को भी समझने का यत्न करता है। मैं कौन हूँ, कहां से आया हूं, मुझे यहां क्या करना है, आगे कहां

जाना है, इस सारे कालचक्र को जानने का यत्न वह अपने मृत्यु नाम के आचार्य के चरणों में बैठकर करता है। कीड़ी से कुंजर तक, मूर्ख से विद्वान् तक, जिस मृत्यु के नाम से सभी कांपते हैं वह उसी रहस्य को समझता है, उसी मौत के साथ टकराता है, खेल करता है, उसे गींडो (फुटबाल) समझकर ठोकर मारता है। अपने जीवन को सारे संसार की सेवा में लगाकर, जनता जनार्दन का सेवक बनकर अपने जीवन के एक-एक श्वास का सदुपयोग करता है। इस प्रकार अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर संसार को तथा अपने आपको पूर्ण करता है। अपना सर्वस्व लोकसेवा में न्योछावर कर अमर होजाता है।

ब्रह्मचारी अच्छे पुष्टिकारक भोजन से, व्यायाम से, प्राणायाम आदि योगाभ्यास तथा घोर परिश्रम से अपने शरीर को इसलिए सुदृढ़, सुन्दर, स्वस्थ और सुगठित बनाता है कि संसार के सभी प्राणियों का मित्र बनकर दीर्घकाल तक अधिक सेवा कर सके। उसके शरीर का वीर्य इस तपस्या के कारण उसके शरीर में शारीरिक बल का रूप धारण करता है तथा उसकी विचाराग्नि का इन्धन बनकर उसके मस्तिष्क को ज्ञान की ज्योति से प्रज्वलित करता है अर्थात् शारीरिक और आत्मिक बल के रूप में उसी के अन्दर रहता है। उस अमूल्य वीर्य के एक बिन्दु को वह नष्ट नहीं करता, वह अखण्ड ब्रह्मचारी बनता है, ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बनता है, मृत्यु को जीतता है, अपने यज्ञमय वा परोपकारमय जीवन के कारण वह अमर होजाता है। न उसे जीवन की इच्छा, न मरने का भय होता है। वह जीवनमुक्त हो जाता है और वह मोक्षपद परमपद की प्राप्ति का अधिकारी बनता है। यह सब कुछ वह अपने देवस्वरूप आचार्य, मृत्यु आचार्य की कृपा से उनकी छत्र-छाया में रहकर, घोर तपस्या करके वेदज्ञान के द्वारा मेखला, कटिबद्धता, जागरूकता, व्यायाम, प्राणायामादि योग के द्वारा प्राप्त करता है अर्थात् अपने श्रद्धेय आचार्यचरणों की कृपा से पूर्ण विद्वान्, पूर्ण योगी, पूर्ण जितेन्द्रिय और ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बनकर संसार में आदित्य के समान अविद्यान्धकार को मिटाता हुआ विचरता है। जिधर भी जाता है उधर ही हलचल मच जाती है। जिस प्रकार भूगर्भाग्नि इस पृथिवी को सदैव गति में रखती है उसी प्रकार वीर्य की अग्नि ब्रह्मचारी को टिकने नहीं देती, खाली नहीं बैठने देती। वह संसार की सेवा में रत रहता है, दु:खियों के दु:खों को मिटाता है, औरों के लिए जीता है तथा औरों के लिए मरता है। उसका जीवन मरण पर-सेवा और परोपकार के लिए होता है। इस प्रकार वह अपने जीवन को सफल करके अमर होजाता है। मेखला, श्रम, तप और वेदज्ञानप्राप्ति जो संसार के सामान्य लोगों को कष्ट वा बन्धन लगते हैं, ये साधन ब्रह्मचारी के बन्धनों को काटनेवाला बनते हैं। क्योंक वह इनकी महत्ता को श्रद्धापूर्वक आचार्य की पवित्र

शिक्षा से हृदयंगम कर चुका होता है। वह इन्हें अमृततुल्य समझकर इनका सेवन करता है।

ऋषियों की स्वसा मेखला

श्रद्धाया दुहिता तपसोधि जाता, स्वसा ऋषीणां भूतकृतां बभूव।
सा नो मेखले मतिमा धेहि, मेधामथो नो धेहि तप इन्द्रियं च।।

(अथर्ववेद ६।१३३।४)

यह मेखला (श्रद्धायाः) श्रद्धा श्रत् अर्थात् सत्य को धारण करनेवाली बुद्धि (आस्तिक बुद्धि विश्वास की) (दुहिता) पुत्री के समान प्रिय अथवा पूर्ण करनेवाली वा दुहनेवाली (तपसः) तप-योगाभ्यास से, वेदरूप ब्रह्मज्ञान से सत्यज्ञान से (अधि) अच्छे प्रकार (जाता) उत्पन्न हुई है। (भूतकृताम्) समस्त सत्यपदार्थों का उपदेश करनेवाले (ऋषीणम्) ऋषियों=मन्त्रद्रष्टाओं की स्वसा (भगिनी) के समान हितकारिणी वा उपकार करनेवाली अथवा अच्छे प्रकार प्रकाश करनेवाली (बभूव) हुई है। (सा) वह तू (मेखले) मेखला (नः) हमें (मतिम्) मननशक्ति और (मेधाम्) निश्चयात्मिका बुद्धि (आ) सब ओर से (धेहि) प्रदान कर (अथो) और भी (नः) हमें (तपः) योगाभ्यास (च) और (इन्द्रियम्) इन्द्र का चिह्न वा इन्द्रियों में बल=पराक्रम वा ऐश्वर्य भी (धेहि) प्रदान कर।

सत्य को धारण करनेवाली बुद्धि वा विश्वास को श्रद्धा कहते हैं। जिसके मन में सत्य है, वाणी से भी सत्य ही बोलता है और जिसके व्यवहार में सत्य है वह यथार्थ में सत्पुरुष, सच्चा आदमी होता है। उसी को श्रद्धा कहते हैं, महात्मा वा देवता के नाम से पुकारते हैं। शतपथ में लिखा है-

सत्यं वै देवा अनृतं मनुष्याः।

देव सत्यस्वरूप होते हैं। उनके आचरण में झूठ-अनृत-असत्य का लवलेश भी नहीं होता। उनका जीवन व्यवहार सत्य से ओतप्रोत होता है। वे असत्य को त्यागने और सत्य को ग्रहण करने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं। सत्य के लिए उन्होंने कमर कसी होती है। वे **''न सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्''** सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं मानते और न ही अनृत (झूठ) से बढ़कर कोई पाप मानते हैं। देवों और मनुष्यों में यही तो भेद होता है कि देव सत्य के पुजारी वा भक्त होते हैं और सामान्य मनुय सत्य का परित्याग कर मिथ्याचरण अधर्म में प्रवृत्त होते हैं। वे असत्य से स्वार्थसिद्धि मानकर अन्धे हो जाते हैं किन्तु सत्सङ्ग से लाभ उठाकर मननशील मनुष्य **''इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि''** अनृत (असत्य) व्यवहार को छोड़कर सत्य धारण करने की प्रतिज्ञा करता है, सत्य व्रत को धारण

करता है और **"मनुष्येभ्यो देवानुपैति"** मनुष्य से देव बनने के लिये जुट जाता है। सत्य उसे देवत्व को प्राप्त कराता है जिसे देव बनना होता है वह सत्य को धारण कर लेता है अर्थात् श्रद्धालु बन जाता है। इससे यही सिद्ध होता है कि श्रद्धालु कहो, देवता कहो एक ही बात है। श्रद्धा माता की कृपा से मनुष्य सत्य को प्राप्त कर देव बन जाता है। श्रद्धा माता की एकमात्र दुहिता प्रियपुत्री मेखला है। इस मेखला को धारण करनेवाला उसकी माता श्रद्धा से कैसे दूर रह सकता है। वह श्रद्धा के बिना जीवित ही नहीं रह सकता है। **"श्रद्धया सत्यमाप्यते"** श्रद्धा माता की कृपा से सत्य को प्राप्त कर देवता बन जाता है। गीता में लिखा है-

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।। (४।३९)

श्रद्धा से युक्त इन्द्रियों का संयम करनेवाला ज्ञानमार्ग का पथिक ज्ञान को प्राप्त करता है। ज्ञान को प्राप्त करके शीघ्र ही श्रेष्ठ शान्ति को प्राप्त होता है।

अज्ञश्चाश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।। (गीता ४-४०)

अज्ञानी और श्रद्धा न रखनेवाला, सन्देह की मूर्ति (मनुष्य) नष्ट होजाता है। जिसकी आत्मा में संशय है, उस मनुष्य का न यह लोक बनता है, न परलोक, और न ही वह सुखी होता है। श्रद्धा से ज्ञान और ज्ञान से श्रेष्ठ शान्ति मोक्ष को प्राप्त होता है। क्योंकि-

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।

ज्ञान के समान शुद्ध पवित्र इस लोक में कुछ भी नहीं है। उसे स्वयं (ज्ञान) योग से सिद्ध हुआ पुरुष आप ही आप समय पाकर आत्मा में प्राप्त कर लेता है, आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है। श्रद्धा से ज्ञानप्राप्ति, शान्ति और आत्मा के दर्शन होते हैं।

वेद में श्रद्धा के विषय में अच्छा प्रकाश डाला है-

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा देवयामसि।।

(ऋग्वेद १०-१५१-१)

श्रद्धा भक्ति से अग्नि प्रदीप्त किया जाता है। श्रद्धा से ही हवन सामग्री से हवन किया जाता है। ऐश्वर्य के शिर पर हम सब श्रद्धा को प्रशंसा के साथ मानते हैं।

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः।
प्रियं भोजेषु यज्वी स्वदं म उदितं कृधि।।२।।

हे श्रद्धा देवी! श्रद्धा से दान देनेवाले का कल्याण कर, श्रद्धा से देने की इच्छा करनेवाले का प्रिय कर, श्रद्धा से भोग और यज्ञ करनेवाले का कल्याण कर, यह मेरा सब उदय से पूर्ण कर। श्रद्धा भक्ति से पुरुषार्थ, दान और कर्म करनेवालों को यश प्राप्त होता है और उनका सब परिश्रम सफल होता है।

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि।। ३।।

जिस प्रकार देवों ने भी असुरों अर्थात् अपना जीवन अर्पण करनेवालों में श्रद्धा रखी थी। उसी प्रकार भोग देनेवाले और यज्ञ करनेवालों में हम सब का उदय कर।

विद्वानों को=देवों को चाहिये कि वे शूरवीरों पर श्रद्धा रखें और शूरों को विद्वानों पर श्रद्धा रखनी चाहिए। देव विद्वान् ज्ञानी तो यज्ञ परोपकार के कार्य करनेवाले होते हैं। शूरवीर क्षत्रिय राष्ट्र-रक्षा तथा राजैश्वर्य के भोगनेवाले होते हैं। उनमें परस्पर श्रद्धा चाहिए। जिससे सबका भला हो सकता है-ब्राह्मण-क्षत्रियों में इस प्रकार श्रद्धा से परस्पर संगठन हो तो राष्ट्र में विलक्षण बल और समृद्धि की प्राप्ति होसकती है। श्रद्धा से सारे राष्ट्र और जाति की उन्नति होसकती है।

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते।
श्रद्धां हृदय्याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु।। ४।।

देवसंज्ञक विद्वान् यजमान श्रद्धा को प्राप्त होते हैं। प्राण से सुरक्षित होनेवाले, प्राणायाम करनेवाले योगी श्रद्धा से ही उपासना करते हैं। हृदय के उच्चभाव से श्रद्धा प्राप्त होती है और श्रद्धा से ही धन प्राप्त होता है।

सब व्यक्ति श्रद्धा के होने से ही सत्कर्म करते हैं। धन की प्राप्ति योग में सफलता (प्राणायाम सिद्धि) अथवा ईश-उपासनादि श्रद्धा से होते हैं। सर्वप्रकार की उन्नति चाहे वैयक्तिक हो, चाहे राष्ट्रीय हो, श्रद्धा से ही होती है। श्रद्धा यों ही किसी दुकान से नहीं खरीदी जाया करती, वह तो मानव के हृदय की एक विशेष भावना से उत्पन्न होती है।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापहे नः।। ५।।

प्रात:काल में श्रद्धा से काम करते हैं और उसी प्रकार मध्यदिन में और सूर्य के अस्त होने पर भी श्रद्धा से भक्ति करते हैं। हे श्रद्धे! हम सब को श्रद्धा से युक्त करो। श्रद्धा की प्रत्येक क्षण में आवश्यकता है।

इस श्रद्धासूक्त का सार यह है-

श्रद्धा, विश्वास, मन का निश्चय, दिल का अटल भरोसा ही मानव के द्वारा महान् से महान् पुरुषार्थ कराता है। श्रद्धा के बिना मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। श्रद्धा के अन्दर अद्भुत बल है, शक्ति है। श्रद्धावान् मनुष्य अपनी श्रद्धा के बल पर अद्भुत कार्य कर डालता है। मनुष्य में कितनी भी शक्ति हो, बल हो, धन हो, वृद्धि हो और अन्य कई प्रकार का सामर्थ्य हो, किन्तु यदि उसमें श्रद्धा न हो तो उसके सब अन्य सद्गुण यों ही धरे के धरे रह जाते हैं। वह कोई भी कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर सकता। श्रद्धा के अभाव में सब सद्गुण बलहीन होजाते हैं, थोथे खोखले होजाते हैं। जैसे दीपक बत्ती के होते हुये भी तैल के अभाव में जल नहीं सकता, प्रकाश नहीं कर सकता।

श्रद्धा से मनुष्य के हृदय में बल आजाता है, इसके कारण सभी गुण प्रकाशमान हो उठते हैं। श्रद्धा के बिना सभी शक्तियां कुण्ठित होजाती हैं। श्रद्धा हृदय में स्फूर्ति, उत्साह उत्पन्न करके मानव को कठिन से कठिन कार्य करने के लिए तैयार करदेती है। क्या धार्मिक, क्या सांसारिक सभी कार्य, श्रद्धा से ही सफल और सुफल होते हैं। जिसकी श्रद्धा देश वा धर्म पर होती है वह उन की रक्षार्थ फांसी के तख्ते पर हंसते-हंसते चढ़ जाता है। इतिहास साक्षी है, हजारों नहीं लाखों धर्म और देश के श्रद्धालु भक्त दीवाने बनकर अपने उद्देश्य के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर गये। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए, वह अपने अन्त:करण में श्रद्धाभक्ति का विकास होने दे। सूखे तर्क वा शुष्क बुद्धिवाद से अपने को तथा लोगों को भ्रम में तो डाला जासकता है, किन्तु श्रद्धा के बिना कोई कार्य सिद्ध नहीं होसकता। इसलिए जो भी उत्तम काम करें, उसे श्रद्धापूर्वक उत्तम प्रकार से करने का अभ्यास करें। जिसके अन्त:करण में श्रद्धा नहीं, उसकी बंजरभूमि में कोई भी सद्गुण का बीज फूल-फल नहीं सकता। इसलिए प्रयत्न से प्रत्येक को अपने अन्दर, अपने तथा सबके कल्याणार्थ श्रद्धा के बीजों का वपन करना चाहिए। सभी शुभकर्मों की फुलवाड़ी फूले-फलेगी और सारे संसार को मालामाल कर डालेगी।

श्रद्धा योगी की जननी के समान

महर्षि व्यास ने योगदर्शन की टीका करते हुऐ श्रद्धा के विषय में इस प्रकार लिखा है-

श्रद्धा चेतसः संप्रसादः। सा हि जननीव कल्याणी योगिनं पाति। तस्य हि श्रद्दधानस्य विवेकार्थिनो वीर्यमुपजायते।।

अर्थात् श्रद्धा चित्त को प्रसन्न करनेवाली है। वह श्रद्धा ही कल्याण करनेवाली माता के समान योगी की रक्षा करती है। उस विवेकार्थी श्रद्धालु को उत्साह उत्पन्न

होता है। उत्साह से स्मृति और स्मृति से चित्त दुःखरहित होकर एकाग्रता के साथ ध्यान करता है। उस समाधिस्थित चित्त में विवेकवाली बुद्धि उत्पन्न होती है। जिससे वस्तु का यथार्थ ज्ञान होता है। उस विवेकज्ञान के अभ्यास और उसका वार-वार अनुभव करने से और वैराग्य से असम्प्रज्ञात समाधि होती है। इसलिए महर्षि व्यास ने ठीक ही कहा है कि श्रद्धा योगी का कल्याण करनेवाली माता वा जननी के समान है। इस श्रद्धा माता की कृपा से योगी असम्प्रज्ञात समाधि तक पहुंच जाता है। अर्थात् श्रद्धा माता अपने श्रद्धालु योगाभ्यासी को पूर्णयोगी बना देती है।

मेखला को श्रद्धा की दुहिता कहा है। मेखला को धारण करनेवाला ब्रह्मचारी देव तथा ऋषि बनने के लिए साधना कर रहा है। उसी तप से यह उत्पन्न हो प्रसिद्ध होती है। ऋषियों की यह भगिनी है। हित चाहनेवाली बहन के समान है। यही ऋषि तथा ब्रह्मचारी जो देव बनने के लिए तप करते हैं-

''**तपो द्वन्द्वसहनम्**'' तप द्वन्द्वसहन को कहते हैं। क्षुधा (भूख) तृषा (प्यास), जाड़ा, गर्मी आदि को सहन करते हुए अपने धर्मकार्य में नित्यकर्म को, योगाभ्यास को निरन्तर श्रद्धापूर्वक करते रहने का नाम तप है। ऐसे धार्मिक तपस्वी ब्रह्मचारियों और ऋषियों की यह दुहिता तथा स्वसा के समान प्रिय और कल्याण करनेवाली है। अर्थात् ब्रह्मचारी तथा ऋषि लोग इसे अपनी तपस्या के द्वारा प्रसिद्ध करते हैं। वे ही मेखला वा कौपीन को धारण करके ब्रह्मचर्य तथा योग की साधना करते हैं। मेखला के ये ही लंगोटवन्द कौपीनधारी पुत्र वा भाई हैं। ये अपनी तपस्या द्वारा इसे प्रसिद्ध करते हैं और मेखला के कारण जागरूक रहते हैं। सच्चे ब्रह्मचारी बनकर अपने जीवन के चरमलक्ष्य मोक्ष तक पहुंचते हैं। मेखला धारण कर अपने ब्रह्मचर्यव्रत को पूर्ण करते हैं। इससे देवपदवी मेखला से ये भिक्षा मांगते हैं, प्रार्थना करते हैं-हमें सुमति प्रदान कर, मेधा बुद्धि देकर तपस्वी बना, हमारी इन्द्रियों में तथा इन्द्रियों के राजा इन्द्र आत्मा में बल और शक्ति का आधान कर। पराक्रम और विद्यादि ऐश्वर्य को पाकर हम ब्रह्मचारी, मेधावी, बलवान्, जितेन्द्रिय, पूर्णविद्वान् और पूर्णयोगी बनें। यथार्थ में ब्रह्मचर्यव्रत का प्रतीक ही मेखला अर्थात् कौपीन वा लंगोट है। इसे धारण करके जब पूर्ण ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता बन जाता है उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। सुमति और सुमेधा पाकर वीर और धीर बन जाता है, जिसका वीर रस के कवि चौ० तेजसिंह ने अपने भजन में अच्छा चित्रण किया है। इसको हमारे भजनोपदेशक म० प्यारेलाल जी तथा स्वामी नित्यानन्द जी महाराज गाया करते हैं। यदि कोई ब्रह्मचारी क्षत्रिय का रुद्ररूप धारण करे तो उस वीर का चित्र इस प्रकार है-

शूर-वीर क्षत्रिय

सबसे बड़ी बात धीर वीर और शूर होवे।
इन तीनें नामों के इन सब गुणों से भरपूर होवे।।
जो खड्गहस्त यानि कर में खड्ग लिये हुये।
अङ्गारों के तुल्य रण में रक्त नेत्र किये हुये।।
जिसके सब शरीर के रोमाञ्च खड़े होरहे हों।
और शत्रु के रक्तपान करने का ढंग टोह रहे हों।
क्रोध से संयुक्त हुआ शत्रुओं को कसता है जो।
शत्रुओं को देख करके रणभूमि में हंसता है जो।
है वो ही शूर महान्।।५।।

दान और तप से भी परोपकार को ही बड़ा जानें।
बल्कि मुक्ति पाने को भी इसके आगे हेय मानें।
जहां तक हो युद्ध में ही मर जाने का यत्न करें।
घर के अन्दर रोगी होकर खाट में कभी न मरें।
ललाट से बहता हुआ रणभूमि में रुधिर-पान।
युद्धरूपी यज्ञ का ले सोमरस उसी को जान।।
होठों को चबाता हुआ दीखे रुद्र रूप धारे।
जिसकी शकल देख करके शत्रु डर जायें सारे।।
है यह वीर की शान।।६।।

धीर के लक्षण

महाप्रलय के वायु से पहाड़ों को हिलते देखा।
बिना चलनेवाले सब सितारों को भी चलते देखा।।
लेकिन घोर विपदा में भी जिसका दिल न डगमगाये।
स्त्री के कटाक्षरूपी बाणों से जो न छेदा जाये।।
दुनियां का कोई भी विषय, खींच नहीं पाये कभी।
क्रोध का महान् ताप जिसको न जलाये कभी।।
धीर उसी को जान।।७।।

जो श्रद्धापूर्वक आचार्यप्रवर से ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर मेखला को धारण करता है तथा मेखला को दुहिता स्वसा (बेटी-बहन) के समान प्रिय और हितकारी समझता है और अपने विचारों को सदैव पवित्र रखता है, जैसी पुत्री और बहन को देखकर तथा उनके पास रहकर भी पिता और भाई सदैव पवित्र भावना

रखते हैं। इसी प्रकार जो शुद्ध विचार रखते हुए अपन मेखला, लंगोट वा कौपीन को पवित्र रखते हैं अर्थात् मूत्रेन्द्रिय पर पूर्ण संयम रखते हैं, उन ऐसे तपस्वी ब्रह्मचारियों को भगवान् सुमेधा तथा सुमति प्रदान करता है। वे जितेन्द्रिय बनकर सच्चे शूर वीर और धीर क्षत्रिय अथवा मेधावी ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण, ब्रह्मर्षि, राजर्षि और देवर्षि बनते हैं। क्योंकि यह मेखला ब्रह्मचारी को ऋषि और देव बनाने के लिए ही देवस्वरूप आचार्य ने धारण करायी है जो सर्वप्रकार के कष्टों और बन्धनों से छुड़ाकर इन्हें भवसागर से पार लेजाना चाहती है। इसलिए मेखला के व्रत-बन्धन में बंधकर ऋषियों के मार्ग पर चलाना ही उसका उद्देश्य है।

ऋषियों की मेखला

यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिबेधिरे।
सा त्वं परिष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले।।

(अथर्ववेद ६। १३३। ५)

(यां त्वा) जिस तुझ को (पूर्वे) पहिले (भूतकृतः) सत्यकर्मी (ऋषयः) ऋषियों ने (परिबेधिरे) चारों ओर बांधा था, (सा त्वं) वह तू (मेखले) हे मेखला! (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ आयु के लिये (मां) मुझे (परिष्वजस्व) आलिंगन कर, चिपट जा।

ब्रह्मचारी मेखला को सम्बोधित करके कह रहा है, हे मेखला तुझे सदैव सत्यकर्म करनेवाले अर्थात् सदाचारी ऋषि लोग अपनी कटि के चारों ओर बांधते आये हैं। वे ही अपने शरीर पर तुझे प्रिय आभूषण के समान धारण करते रहे हैं। उनके साथ तेरा सभी सृष्टियों से सम्बन्ध रहा है। जो भी ऋषि पहले हुये हैं और जो अब वर्तमान में हैं तथा जो भविष्य में होंगे वे तुझे अपनी स्वसा समझते रहे हैं, तथा समझते रहेंगे, फिर वे तुझे कैसे छोड़ेंगे? कोई भ्राता स्वसा से अपने प्रिय अटूट स्नेह के सम्बन्ध को कैसे तोड़ सकता है? ऋषि सारी आयु पवित्र ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हैं, फिर वे इस व्रत की रक्षा करनेवाले एकमात्र प्रतीक मेखला का परित्याग कैसे कर सकते हैं। ऋषियों का मेखला के साथ अटूट सम्बन्ध है, वे इसे सदा धारण करते आये और सदैव धारण करते रहेंगे । क्योंकि "**कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः**" कौपीनधारी (लंगोटधारी) ही यथार्थ में भाग्यवान् होते हैं और कौपीन का आधार ही मेखला है। मेखला में कौपीन को पहनते हैं। फिर मेखला ऋषियों की स्वसा है, प्रकाशदेनेवाली है। बहन के समान उन्हें प्यारी है और मेखला के प्रिय भ्रातृगण सत्य के लिये प्राण देनेवाले ऋषि लोग ही हैं। इसलिए मेखला को आगे पीछे दायें-बायें चारों ओर से बांध रखा है अर्थात् सारे शरीर को

मेखला के बन्धन से ब्रह्मचर्य की दीक्षा दीगई है। सारी कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां भी इसी मेखला के व्रतबन्धन से संयम में, अनुशासन में रहती हुई ब्रह्मचर्य की साधना में लगी हुई हैं। मन, वचन, कर्म से, ऋषिगण ब्रह्मचारी हैं। बाहर, भीतर आगे पीछे दांयें, बांयें, ऊपर-नीचे से भी ओर ब्रह्मचर्य का वातावरण बना रखा है। उन्हें संसार में सब कुछ ब्रह्मचारी ही दिखाई देता है। वे इस ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करके मेखला वा लंगोटी लगाकर भूमि-माता के सच्चे लंगोटीबन्द सपूत बन गये हैं। मानो वे अथर्ववेद के ब्रह्मचर्यसूक्त की भाषा में कह रहे हैं-

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः।
संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः।। २१।।

अर्थ-औषधियां भूतकाल, भविष्यत्काल, दिन और रात्रि, ऋतुओंसहित संवत्सर, वे सभी ब्रह्मचारी हैं, ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं।

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षा पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः।।२२।।

पृथिवी के, द्युलोक के समस्त लोक (मनुष्य), पशु जो जंगली हैं और जो गांव के हैं और बिना पंख के प्राणी और जो पंखवाले भी हैं, वे सब ब्रह्मचारी हैं। ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्यपालन की धुन में इतना मस्त होगया है कि उसे संसार के प्राणी-अप्राणी, जड़-चेतन, सभी ब्रह्मचारी ही दीख पड़ते हैं। संसार का यह नियम है, चोर को सब चोर ही दिखाई देते हैं। सच्चे को सब सच्चे दीखते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मचारी को सब कुछ ब्रह्मचारी ही दीख पड़ता है। वह मस्त होकर कह रहा है-आदिकाल से ऋषि लोग, हे मेखला! तुझे बांधते आरहे हैं। जन्म से कोई ऋषि नहीं होता। आरम्भ में तो वे भी मेरे समान मेखला धारण करके ब्रह्मचारी ही बने थे। फिर तपस्या करके सत्कर्मी ऋषि बनगये। मैं भी ऋषि बनूंगा। मेखला को अपनी प्रिय बहन स्वसा बनाऊंगा, फिर मेरी भगिनी मेखला मुझे कैसे छोड़ेगी। मैं इस बहन के अटूट सम्बन्ध, सच्चे स्नेह को भूल, मेखला को कैसे छोडूंगा। मेरे प्राणों के रहते यह मेरी कटि पर बंधी रहेगी, चिपटी रहेगी। दीर्घायु तक, पूर्ण आयु तक, पूरे चार सौ वर्ष की आयु तक मेरी कटि को यह चारों ओर से सजायेगी। न मैं इसे छोडूंगा, न यह ही मुझे छोड़कर मुझ से अलग होगी। दोनों बहन-भाई परस्पर एक दूसरे की सहायतार्थ साथ रहेंगे। यदि मैं इसे छोड़ने की निर्बलता दिखाऊंगा, तो यह मुझे शिक्षा देकर फटकारेगी, तुम कैसे भाई हो, जो मुझे पहनकर, धारण करके ढीले होरहे हो। तुम तो ऋषि बनने लगे थे, आज अपनी स्वसा तगड़ी मेखला को छोड़कर वणिक् की छोरी (लड़की) के समान निर्बल हो

रहे हो। तगड़ी धारण करके तगड़े बनो, दृढ़ बनो, दृढ़ संकल्पवाले बनो, ऋषि बनो, देव बनो, चार सौ वर्ष की दीर्घायु भोगनेवाले पूर्ण योगी, पूर्ण ब्रह्मचारी, पूर्ण विद्वान् जितेन्द्रिय बनकर राजर्षि बनो, ब्रह्मर्षि बनो अथवा देवर्षि बनो। ऋषियों की सन्तान होकर ऋषि से न्यून रहे तो मुझ ऋषियों की स्वसा मेखला को बांधकर लजाओगे। सावधान मैंने तेरी कमर कसी थी, तुझे कटिबद्ध किया था, जागरूक किया था। मत घबराओ, मैं श्रद्धा की दुहिता हूं, अभी हृदय में उत्साह भरती हूं। तुझे ऋषि बनाकर छोड़ूंगी। मुझे श्रद्धापूर्वक धारण करनेवाला कभी ऋषियों की पंक्ति से कैसे बाहर जासकता है ?

इस प्रकार की उच्चशिक्षा और भावना मेखलाधारी में रहनी चाहिए। तभी वह ऋषि बनकर अपने जीवन को सफल और सुफल बनाकर दीर्घ आयु (चार सौ वर्ष की आयु) भोगकर अपना तथा संसार का उपकार करने में समर्थ हो सकता है। लाखों ऋषि इसी प्रकार के इस प्रभु की पवित्र सृष्टि में पहले होचुके हैं। इस बात के लिये इतिहास साक्षी है।

अट्ठासी सहस्र ऋषि

अष्टाशीतिसहस्राण्यूर्ध्वरेतसामृषीणां बभूवुस्तत्र-अगस्त्याष्टमैर्ऋषिभिः प्रजनोऽभ्युपगतः। तत्रभवतां यदपत्यं तानि गोत्राणि, अतोऽन्ये गोत्रावयवाः।

(महाभाष्य ४-१-७९)

ब्रह्मा से लेकर जैमिनिपर्यन्त अर्थात् आदिसृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त ८८ सहस्र ऊर्ध्वरेता अखण्ड ब्रह्मचारी ऋषि-महर्षि (राजर्षि और देवर्षि) हुये हैं। ये सभी निर्दोष, निष्पाप, निष्कामसेवी, देवतुल्य, आप्त पुरुष थे। सारी आयु ब्रह्मचर्यरूपी तपस्या के आभूषण से ही विभूषित रहे। ये तापस, तेजस्वी विद्वान् देवतागण वेद के पवित्र ज्ञान का प्रचार करते रहे। इन्हीं महात्माओं की कृपा से आर्यावर्त देश सारे संसार का गुरु रहा और इसका सारे भूमण्डल पर महाभारत पर्यन्त एकच्छत्र चक्रवर्ती राज्य रहा।

उपर्युक्त ८८ सहस्र ऋषियों में से केवल अगस्त्यादि आठ ऋषियों ने प्रजा (सन्तान) उत्पन्न की अर्थात् आठ ऋषि ही विवाह करके गृहस्थी बने। इसलिए ये आठ ऋषि ही गोत्रप्रवर्त्तक हुये अर्थात् इन्हीं की सन्तान से आठ गोत्र चले। पहले प्रारम्भ में इन्हीं के नाम से आठ गोत्र थे। पीछे अनेक उपगोत्र इन्हीं की सन्तान वा शिष्यों से चल पड़े। गृहस्थ होते हुये भी ये ऋषि महर्षि लोग बड़े संयम वा ब्रह्मचर्य से रहते थे, केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये वीर्यदान देते थे।

महाभारत का काल पतन का काल माना जाता है किन्तु उस समय गृहस्थ में

भी योगिराज श्रीकृष्ण जैसे महात्मा थे जो विवाह करने के पश्चात् भी पति पत्नी १२ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहे। इसीलिये महर्षि दयानन्द उनकी प्रशंसा में लिखते हैं-

''देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उसके गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा।''

यह ठीक है कि महाभारत से एक सहस्त्र वर्ष पूर्व देश पतन की ओर चल पड़ा था, फिर भी महाभारत के समय तक महर्षि व्यास, जैमिनि आदि अनेक ऋषि-महर्षि विद्यमान थे, उनके प्रभाव से ब्रह्मचर्यपूर्वक पठन-पाठन की प्रणाली चल रही थी। इसलिए उस समय तक १०० वर्ष की आयु तक तो प्रायः सभी जीवित रहते थे तथा युवा और बलवान् योद्धा होते थे। महर्षि व्यास की आयु तीन सौ वर्ष से अधिक थी। राजर्षि ब्रह्मचारी भीष्मपितामह १७६ वर्ष की आयु में कौरवदल की ११ अक्षौहिणी सेना के महासेनापति थे। इस आयु में ही अकेले उन्होंने नव दिन तक घोर युद्ध किया। लाखों योद्धाओं को मौत के घाट उतार दिया। अपनी इच्छा से शरीर छोड़ा, मृत्युंजय कहलाये। यह सब मेखलाव्रत (ब्रह्मचर्य) का ही प्रताप था। उस समय ब्रह्मचर्यपालन के कारण अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव आदि सबकी आयु १०० वर्ष से न्यून नहीं थी। वे इस आयु में युद्ध कर रहे थे। कितने आश्चर्य की बात है, उस समय चार पीढ़ियां युद्ध में भाग ले रही थीं और वे सभी युवा थे तथा बड़े-बड़े महारथी थे।

जैसे महाराज शान्तनु का सगा भाई वाह्लीक युद्ध में लड़ रहा था, वह भीष्म पितामह का चाचा था। वाह्लीक का पुत्र सोमदत्त युद्ध में रत था। सोमदत्त का पुत्र महारथी भूरिश्रवा उस काल का प्रसिद्ध योद्धा था। भूरिश्रवा के पुत्र भी युद्ध में लड़ रहे थे। उस समय सौ वर्ष तक युवा रहते जीना और युद्ध में भाग लेना साधारण बात थी।

सभी ऋषि महर्षि इसी मेखला स्वसा के पवित्र ब्रह्मचर्यव्रत के कारण दीर्घायु को प्राप्त हुये। ब्रह्मचारी भी यही प्रतिज्ञा करता है कि मेरे पूर्वज ऋषि लोग मेखला को अपनी कल्याणकारिणी हितैषिणी भगिनी समझकर धारण करते रहे हैं, शरीर के चारों ओर प्रम से बांधे रहे हैं। मैं भी उनका अनुकरण करूंगा, दीर्घायु की प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य धारण करूंगा, ब्रह्मचर्य की साधनार्थ मेखला को शरीर से बहुत स्नेहपूर्वक संयुक्त रखूंगा, चिपटाये रखूंगा, बांधे रखूंगा, क्योंकि यही मेरी ब्रह्मचर्य साधना को सफल करके मुझे दीर्घायु प्रदान करेगी, यह मुझे दृढ़ निश्चय है। मेखला में मेरी अटूट श्रद्धा है, क्योंकि श्रद्धा की यह स्वयं दुहिता है संसार की

सम्पूर्ण शक्तियों को दुहकर यह मेरे अन्दर भर देगी। इसको धारण करके मैं सच्चा ब्रह्मचारी, सफल ब्रह्मचारी, ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बना हूं। ब्रह्मचर्य ही जीवन है, इसका अपार आनन्द मैं स्वयं लेकर अनुभव कर देख चुका हूं। फिर इस मेखला, अपनी प्रिय भगिनी से पृथक् कैसे होसकता हूं, इसी के धारण करने में मेरा कल्याण है। मेरे अन्दर इसने दृढ़ विश्वास और श्रद्धा उत्पन्न करदी है। मनुष्य अखण्डित ब्रह्मचर्य का पालन करके ऋषियों के समान ४०० वर्ष तक आयु को प्राप्त कर सकता है और जो मेखलाधारी ब्रह्मचारी इस ब्रह्मचर्य का लोप वा नाश नहीं करते वे ही सब प्रकार के रोगों से रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

महर्षि दयानन्द जी ने सामान्य मनुष्यों के लिये यह उपदेश दिया है-

"जो अपने कुल की उत्तमता, उत्तम सन्तान, दीर्घायु, सुशील, बुद्धि, बल, पराक्रमयुक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें वे १६ (सोलहवें) वर्ष से पूर्व कन्या और २५ (पच्चीसवें) वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें। यही सब सुधारों का सुधार सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करनेवाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रखके अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवे।"

ब्रह्मचर्य के प्रताप से महर्षि दयानन्द ने इस युग में हलचल मचादी थी। एक कवि ने एक कवित्त में इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। इस कवित्त को आर्योपदेशक पं० बेगराज जी खूब झूम-झूम कर गाते हैं।

कवित्त

महर्षि दयानन्द का आगमन

छाया घनघोर अन्धकार मिथ्या पन्थन को,
शुद्ध बुद्ध ईश्वरीय ज्ञान विसराया था।
वैदिक सभ्यता को अस्त व्यस्त करने के काज,
पश्चिमी कुसभ्यता ने रंग बिठलाया था।
गौ विधवा अनाथ त्राहि-त्राहि करते थे,
धर्म और कर्म चौके चूल्हे में समाया था।
रक्षक नहीं था कोई भक्षक बने थे सभी,
ऐसे घोर संकट में दयानन्द आया था।

यह कवित्त हरयाणे के वीर रस के प्रसिद्ध कवि चौधरी तेजसिंह का है जिसे पूज्य स्वामी धर्मानन्द जी मस्ती से गाते हैं। कौपीनधारी मेखला के एकमात्र प्रचारक लंगोटी के धनी बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द के विषय में है।

शूरवीर ब्रह्मचारी

विद्या में ही नहीं बल्कि स्वामी जैसे शूरवीर।
न मान्धाता चक्रवर्ती बलधारी थे।।
राम नहीं रावण नहीं न वीर बानासुर।
न अङ्गद न हनुमान् न बाली अहंकारी थे।।
भीष्म नहीं, भीम नहीं, न युधिष्ठिर सत्यवादी।
न अर्जुन से बलवान् जिनके बाण लक्ष्यधारी थे।।
कहे **तेजसिंह** एक ओर दुनियां सारी।
एक ओर ऋषि दयानन्द ब्रह्मचारी थे।।

चन्द्र कवि ने ठीक कहा है–

डेढ़ अरब के मुकाबले पर इकला ही वीर दहाड़ा था।
जो कोई उनके सन्मुख आया पल में उसे पछाड़ा था,
जिसका शोर मचा दुनियां में ऋषि दयानन्द आला।।४।।

महर्षि दयानन्द के आने से पूर्व तो सारे संसार में घोर अन्धकार छाया हुआ था। ब्रह्मचर्य का नाम भी संसार के लोग नहीं जानते थे। बालविवाह, वृद्धविवाह आदि अनर्थों की भरमार थी। भारत में योरुप की दूषित अनार्षशिक्षाप्रणाली के कारण, चोरी जारी, मांस मदिरा, हत्या, कतल सभी पापों की खूब भरमार थी। इन सब रोगों की एकमात्र चिकित्सा अमोघौषध महर्षि दयानन्द ने आर्षशिक्षा वेदशिक्षाप्रणाली बतायी। इसका पुनः प्रचार महर्षि वेदव्यास के पीछे ५ सहस्र वर्ष पश्चात् आचार्यप्रवर देव दयानन्द ने किया। शिखा सूत्र मेखला की पुनः याद दिलायी। इन वैदिक संस्कृति के प्रतीक मेखलादि का महत्त्व पुनः ऋषियों की सन्तान को समझाया। यथार्थ में कोई माने चाहे न माने, वर्तमान युग में महर्षि दयानन्द ने एकमात्र वेदप्राण पुरुष और आर्षज्ञान के अद्वितीय प्रचारक हुए हैं। आर्षज्ञान के विस्तार और प्रचार से मानवसमाज में सुख और शान्ति के सूर्य का उदय होगा। आर्षशिक्षा के केन्द्र हैं केवल गुरुकुल। इसलिए संसारकल्याणार्थ और सुख शान्ति की प्राप्ति के लिय अपने बालक बालिकाओं को केवल गुरुकुल में ही शिक्षा दिलावें। स्कूल कॉलेज रावण की लंका हैं, इनसे सर्वथा दूर रहें।

महर्षि दयानन्द और वेद

हरयाणा के प्रसिद्ध आर्य भजनोपदेशक महात्मा दादा बस्तीराम जी ने भजन में इसका अच्छा चित्र खेंचा है–

टेक-स्वामी म्हारे को वेद पियारे थे।

वेद के कारण घर छोड़ा, सब संसार का सुख छोड़ दिया।
वेद के कारण राख रमाई, वेद के कारण योग लिया।।
वेद के कारण बन-बन डोले, वेद के कारण दुःख सहन किया।
वेद के कारण यौवन जग ढूंढा, जैसे राम ने ढूंढी सिया।।
वेद के कारण फिरे पहाड़ों, शीत उष्ण जल सिर पे लिया।
वेद के कारण खाई बरफ, कोई सुने तो थर थर कांपे हिया।।
वेद के कारण धूणी तपे, तन सुन्दर अग्नि में होम दिया।
वेद के कारण दुष्टजनों के, हाथ से जाकर जहर पिया, जी।।
स्वामी को विष प्यावनहारे ब्रह्महत्यारे थे। स्वामी हमारे.....
वैदिक बूटा अधिक अनूठा, सब मिल उसको सींचो सही।
इसका थामनेवाला है गुरुकुल, जब यह बिगड़ा तब नैया बही।।
विद्या बिन मत जीयो पुत्र, यों हाथ हृदय पर लाके कही।
गऊरक्षा करो तन मन धन से, इन बिना कहां दूध दही।।
अनाथरक्षा करने की, तुम्हें दयानन्द ने शिक्षा दई।
चलती बेर क्या कह गये तुम को, वचन याद वह है या नहीं।।
'उठो खोलदो किंवाड़' कहकर पारब्रह्म की शरण लई।
रस्सी जहाज की दे तुमको, फिर ऋषि दुनियां छोड़दई, जी।।
'हरिसिंह' हम उस योगी के ऋणचढ़ सारे थे।। स्वामी हमारे.....

महर्षि दयानन्द का हम सब पर इतना ऋण है कि जिसे लेखनी लिख नहीं सकती और बाणी बखान नहीं कर सकती। **जितने रोम मेरे शरीर पर हैं, यदि मैं इतने जन्म लेकर सारी आयु ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेद धर्म और आर्षशिक्षा का प्रचार करूं तब भी उस देवर्षि दयानन्द के उपकार वा ऋण से अनृण नहीं होसकता।** ऋषिवर आपने जीवन में १६ वार विष पीकर भी हमें ब्रह्मचर्यामृत का पान कराया। शिखा सूत्र और मेखला पहनाकर पुनः ब्रह्मचर्य की लुप्त हुई प्रणाली का उद्धार किया। एक सच्चे आचार्य का कर्त्तव्य निभाया। आर्यजाति को मृत्युशय्या से उठाकर पुनः जीवनामृत का पान कराया। मुन्शीराम से पतित को महात्मा और नास्तिक गुरुदत्त को मुनिवरों की पदवी तक पहुंचाया। स्वयं ब्रह्मचर्य के तप से परमपद को प्राप्त कर मृत्युञ्जय कहलाये।

देश के बालको और युवको ऋषिवर के पदचिह्नों पर चलो। वीर्यरक्षार्थ मेखला धारण कर सच्चे ब्रह्मचारी बनो, सच्चे मानव बनकर देवता बनने का यत्न करो, इसी में सबका हित और कल्याण है।